पुरानी बातें

(लघु कथा संग्रह)

(भाग-1)

✻ प्रस्तुति ✻

श्रुतसंवेगी श्रमणरत्न आदित्यसागर

प्रकाशक

समर्पण समूह

जैनं वचनं सदा वंदे

आशीषानुकंपा

शताब्दी देशनाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी मुनिराज

कृतिकार

श्रुतसंवेगी श्रमण आदित्यसागर जी मुनिराज

संपादन / सहयोग

श्रुतप्रिय श्रमण अप्रमितसागर जी मुनिराज
सहजानंदी श्रमण सहजसागर जी मुनिराज

कृति का नाम

पुरानी बातें

(लघु कथा संग्रह) (भाग-1)

पुण्यार्जक परिवार

दिनेश-दीपा जैन (सरसावा, उ.प्र.)
मोहित-शिल्पा-अर्हम जैन, रोहित-पलक-अगम्य जैन
एवं समस्त जैन परिवार (बैंगलुरु)

संस्करण - 2023 : 1008 प्रतियाँ

प्राप्ति स्थान
भोपाल : 91790-50222
जबलपुर : 98276-07171
इन्दौर : 98260-10104
इन्दौर : 94253-16840
भीलवाड़ा (राज.) : 63766-49881

आकल्पन एवं मुद्रण
डीसेन्ट ग्राफिक्स इंदौर
मो. 98260-14047

शुभाशीष

स्वाध्याय भावों को भावान्तर करने की कला है, बिना स्वाध्याय के अविद्या का विनाश संभव है, भाव-विशुद्धि भावान्तर के निर्णय पर ही है, भाव अशुद्धि भावान्तर में आत्म-बुद्धि है। चारों ही अनुयोगों का लक्ष्य स्व से परिचय करना और पर-परिचय से विमुख होना है।

संयम का दीर्घकाल व्यतीत हो जाए तब भी अतीत से अपरिचित नहीं हो सके; भविष्य परिचय का मेल बना रहे, इस भावना में जीने वाला आत्महित से पूर्ण विमुख है। प्रथमानुयोग का कारण है। पर जीवन में घटित घटनाओं का संग्रह कथा, पुराण, चारित्र होते हैं।

वस्तुत्व की सरलता, सत्यार्थ-बोध करने वाले दृष्टान्त उदाहरण लघु-कथायें होती हैं।

बाल बोधनार्थ **श्रमण मुनि श्री आदित्य सागर जी** ने **"पुरानी बातें"** नामक कहानी संग्रह कृति संगृहीत कर प्राणिमात्र पर उपकार किया है। जो प्रवचन पटु हैं, भाषण कला में कुशल हैं उनके लिए एक साथ एक स्थान पर लघु-कथाओं का संग्रह वस्तु के वस्तुत्व को समझाने के लिए यह कृति उपयोगी है।

मुनिश्री आदित्यसागर जी प्रज्ञावन्त में से एक हैं, आप इसी प्रकार आर्जव-मार्दव धर्म के साथ वागीश्वरी की आराधना करते हुए जिनशासन नमोऽस्तु शासन की, आत्म-प्रभावना के प्रभावना करते रहें, यही शुभाशीष है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर जी — **श्रमणाचार्य विशुद्ध सागर**

अखण्ड भारत, झारखण्ड

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव प्रवास

२६ मार्च २०२१

मेरी बात

संप्रति काल में चाहे श्रमणसंस्कृति हो, वैदिक-संस्कृति हो अथवा अन्य कोई भी आम्नाय हो, सभी के साहित्य गद्य-पद्य कथाओं से भरे पड़े हैं। ये सभी कथाएँ संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा में रचित हैं। किन्तु समय की मांग एवं ज्ञान की विकलता के कारण ये कथाएँ हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, ढूंढ़ारी, बुंदेली, कन्नड़ी, मराठी आदि प्रांतीय-क्षेत्रीय भाषा में परिवर्तित करके प्रस्तुत की गईं।

स्वाध्याय के प्रति रुचि उपजाने के लिए कथा साहित्य सबसे सुंदर साधन है। वर्तमान युग में अतिव्यस्तता एवं समयाभाव के कारण लघु कथाओं का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। कथाओं का मुख्य-उद्देश्य जीवन में समता, नैतिकता आदि की वृद्धि तथा युवाओं को सन्मार्ग की ओर लगाने का रहता है। इन कथाओं का जीवन में विशेष महत्त्व भी है। जीवन दिशा को मोड़ने के लिए कभी-कभी इनसे अच्छी प्रेरणा मिलती है। पाठकवृंद इन लघु कथाओं को बड़े चाव से पढ़ते हैं। बालकों को तो छोटी कथाएँ विशेष प्रिय होती हैं।

वर्तमान युग में बाल, युवक एवं वृद्ध समाज तक का पूरा झुकाव उपन्यास, बृहत्कथा एवं लघुकथा साहित्य की ओर देखा जा रहा है। इन्हीं सभी बातों को ज्ञान में रखते हुए '**पुरानी बातें**' कृति का प्रस्तुतिकरण किया गया है। मैंने संप्रति में **सदाचार, सरलता, नम्रता, मानवता, आध्यात्मिकता, परोपकारिता** की जागृति के सदुद्देश्य से इन लघु कथाओं का संकलन आवश्यक समझा।

इन कथाओं का संग्रह विभिन्न कथा ग्रन्थों एवं कथाकारों के ग्रन्थों से किया गया है। उन सभी मनस्वी लेखक, संकलनकर्त्ता तथा

प्रवचनकारों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ। इस कृति में सारी बातें पुरानी हैं, इनमें मेरा कुछ भी नहीं है; हाँ संकलन एवं प्रस्तुति-करण का अत्यल्प-श्रम अवश्य है। आशा है **आत्मोन्मुखी गुरुदेव आचार्यश्री विशुद्धसागर जी** के आशीष से संकलित यह **'पुरानी बातें'** कृति आपके जीवन के निर्माण में उपयोगी साबित होगी।

।। मंगलं भवतु ।।

शाश्वत सिद्धक्षिति
सम्मेदशिखर जी
२०-०२-२०२०

विशुद्धपदाकांक्षी
- श्रमण आदित्यसागर

प्राक्कथन

बात पुरानी जानकर, करना तनिक विचार।
बात हमारी तो नहीं, करना आतमसात।।

भारतीय श्रमण परंपरा में अनेकानेक बहुश्रुतवंत आचार्य, उपाध्याय एवं श्रमण भगवंत हुए जिन्होंने अपनी साधना के अमूल्यसमय में से समय निकालकर जिनदेव के शासन को जयवंत करनेवाले साहित्य के लिए अपूर्व योगदान दिया है। इसमें आलेख-साहित्य, प्रवचन-साहित्य, संस्कृत-प्राकृत साहित्य,पत्र-संदेश-साहित्य, और कथा-साहित्य आदि संप्राप्त हैं।

इसी का अनुकरण करते हुए **चर्याशिरोमणि श्रमणाचार्य गुरुदेव १०८ श्री विशुद्धसागर जी मुनिराज** के सुयोग्य शिष्य एवं मेरे अग्रज **श्रुतसंवेगी श्रमणरत्न मुनि श्री आदित्यसागर** जी ने **पुरानी बातें** (लघु कथा संग्रह) का संकलन कर जैन वाङ्मय का बोध कराने हेतु परिश्रम किया है।

वास्तविकता में देखा जाए तो ये कथाएँ केवल कथाएँ ही नहीं अपितु हमारे जीवन का एक पहलू भी है। हम अपने इस लघु जीवन में इन्हीं कथाओं की भांति परिस्थितियों से गुजर चुके होते हैं, मगर व्यस्तता के कारण हम उन्हें भूल जाते हैं। इसी बात का बोध कराने के लिए यह पुरुषार्थ मुनि श्री ने किया है।

ये कथाएँ आपके जीवन-संचार के लिए एक अनमोल संवाहक बनेंगी। भले ही ये कथाएँ छोटी हों या बड़ी, लौकिक हों या धार्मिक पारिवारिक हों या सांस्कृतिक, नैतिक हों या आध्यात्मिक; जीवों के हृदय-पटल को झकझोर देने वाली होंगी। ये कथाएँ वैराग्य की किरणों

को प्रस्फुटिक करने के साथ-साथ आपके विचित्रमय जीवन को चरित्रमय बनाने के लिए प्रेरक अवश्य बनेंगी।

मेरा परम-सौभाग्य है कि मुनि श्री ने मुझे इस लघुकाय महान कृति के संपादन करने का अवसर प्रदान किया, इस हेतु हम कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। अगर कहीं कोई त्रुटि शेष हो, तो पाठकवृंद हमें अवगत अवश्य कराएँ। आप सभी भव्यात्मन् इन **पुरानी बातों** को पढ़कर, अनुभव में लाकर, अपने जीन को परिवर्तित करके अपने जीवन को बेहतर बनायें और सच्चरित्र को प्राप्त करें। इसी मंगलभावना के साथ ॐ नमः।

शाश्वत सिद्धक्षेत्र **- श्रमण मुनि अप्रमितसागर जी**
सम्मेदाचल
(२०/०२/२०)

कहाँ क्या मिलेगा

क्रं.		पृष्ठ सं.
1.	संसार में निर्दोषी कौन?	01
2.	कोऽरुक्?	03
3.	आदर्श दान	04
4.	विनम्रता	06
5.	बलि के लिए दलील	07
6.	समझौता	09
7.	सहनशीलता	10
8.	उत्तम क्षमा	11
9.	शरणागत की रक्षा	12
10.	अब नहीं करूँगी भूल	13
11.	वास्तविक त्याग का मार्ग	14
12.	कोई किसी का नहीं	15
13.	उन्नति में बाधक विकल्प	17
14.	ढूंढ़ रहा हूँ	19
15.	महानता	20
16.	दुःखों का कारण	21
17.	त्याग से बन्धन मुक्त	23
18.	मनहूस कौन?	24
19.	बुराई के बदले भलाई	26
20.	बुद्धि चातुर्य	27
21.	शिक्षाप्रद मूर्तियाँ	29
22.	अंतरावलोकन	30

23.	अद्वितीय विद्वत्ता	31
24.	सन्मति नाम क्यों?	32
25.	भगवान् महावीर की निर्भयता	33
26.	बोलो बोली ना कि गोली	34
27.	आत्म-शांति का पथ	35
28.	दूध-पानी जैसी मित्रता	36
29.	छोटा बड़ा डाकू	37
30.	चन्द्रगुप्त की गुरु-भक्ति	38
31.	सती सीता की सीख	40
32.	सच्ची शिक्षा	42
33.	मत करो अभिमान	43
34.	क्या है सच्ची सम्पत्ति?	45
35.	डोर मत छोड़	47
36.	अहिंसक की आवाज	49
37.	दृढ़-अहिंसक	50
38.	झूठ का भंयकर उत्पात	51
39.	सच्ची साधना से बनो साधु	53
40.	मुनिराज भूदेव-भवदेव	54
41.	साले-बहनोई का धर्म प्रेम	58
42.	व्यर्थ की लड़ाई	59
43.	दुःख का अन्त कैसे हो?	60
44.	साधना से दोष दूर	65
45.	गंगा में गहा ग्राहने	66

46.	किरण देवी की दृढ़ता	68
47.	स्वयं का पाप स्वयं को खा गया	70
48.	सच्चा सहोदरपना	71
49.	मातृसेवा	73
50.	न्याय की विजय	74
51.	मानव से महान् कैसे?	79
52.	ज्ञानमद का परिणाम	80
53.	शान्ति की खोज	81
54.	अभ्यास से भ्रम गया	83
55.	सत्य से मुक्ति	84
56.	आकांक्षाओं का दुष्फल	86
57.	काले सिर वाले की स्थिति	87
58.	सत्ता का प्रभाव	89
59.	राजा की नीति	90
60.	विश्वास की गहराई	91
61.	सरस्वती कुछ कहना चाहती है	92
62.	आप क्या बनना चाहते हैं?	93
63.	वोटों की चाह में	94
64.	घर-घर में मरघट बना दूँगा	95
65.	कौन किसको प्रणाम करता है	96
66.	कौन-सा अपराध	97
67.	सांप्रदायिक संकीर्णता	98
68.	आईने की टूट से बची घर की फूट	99

69.	चाबी की उपयोगिता	100
70.	कौन गुरु, कौन शिष्य?	101
71.	पत्नी द्वारा प्रतिबोध	102
72.	मुक्ति का मग	104
73.	सफलता का सूत्र-कार्यनिष्ठा	106
74.	बुरा कौन?	107
75.	आँख की दवा कान के लिए कैसे अच्छी?	108
76.	रुग्ण की सेवा स्वात्म सेवा	109
77.	पक्षी की मैत्री	110
78.	थोड़े के चक्कर में पूरा गया	111
79.	आलंबन की शक्ति	112
80.	खोपड़ी मनुष्य की	113
81.	भय पाप का	114
82.	खोटा सिक्का कभी न लेना	116
83.	बिना जड़ के वृक्ष कैसे संभव	117
84.	निर्णय व सफलता का सूत्र	118
85.	विवाद क्यों?	119
86.	आदर्श विद्यार्थी	120
87.	सुधार का सही मार्ग	121
88.	सिर्फ दीए में तेल चाहिए	122
89.	विलक्षण परीक्षा	124
90.	अध्ययन की सार्थकता	125
91.	संदेह क्यों?	127

92.	पुरुषार्थ की प्रेरणा	128
93.	मैडम गलत पढ़ाती है	129
94.	भूल का अनुभव	130
95.	बुद्धि का समग्र उपयोग	131
96.	क्षणिक सुख की विचित्र परिणति	132
97.	मूल्यों का बोध	133
98.	मेरेपन की चेतना	134
99.	श्रमण कौन?	135
100.	जिसके लिए, वह कहाँ?	136
101	मूल्य सही चोट का	137
102	झूठ सामने आ ही जाती है	138
103	स्वयं खोजो, तुम कौन हो?	140
104	वासना का तीर	141
105	आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्	142
106	अध्यात्म-विद्या में प्रवेश	144
107	भय और प्रलोभन	145
108.	प्रक्रिया का बोध और उपयोग	146
109	भीतर की ओर भागना	148
110.	कानों से सुनकर मुँह से निकालना	149
111.	दृष्टि में नयापन	150

----*

संसार में निर्दोषी कौन?

एक बार राजा के दरबार में बड़े जोरों का शोर सुनाई पड़ा। सभी लोग मंत्री के विरुद्ध नारे लगा रहे थे। आवाज आ रही थी-'मंत्री बड़ा नीच है,भारी बदमाश है, देश के लिए घातक है।'

राज को क्रोध आ गया। आज्ञा हो गई- 'मंत्री को शीघ्र ही शूली पर चढ़ा दिया जाए'।

दिन निश्चित हुआ और शूली भी तैयार हुई। मंत्री ने राजा से अंतिम बात करने का अवसर मांगा। बात-चीत में उसने कहा-'मैंने सारी चीजें तो आपको बतला दी, पर मोती बोने की कला आपको न सिखा सका।'

राजा ने कहा- 'सच! क्या तुम इसे जानते हो? तो ठीक जब तक मैं यह सीख न लूँ, तब तक तुम्हें जीने का अवसर दिया जाता है।'

मंत्री ने कतिपय विशिष्ट महलों की ओर संकेत करते हुए कहा- इन मकानों को ढहवा दिया जाय, क्यों कि इसी जमीन में उत्तम मोती पैदा हो सकते हैं।' मकान ढहवा दिये गये। ये मकान उन्हीं दरबारियों के थे, जिन्होंने मंत्री के विरुद्ध झूठी शिकायत की थी। वहाँ मंत्री ने जौ का रोपण करवा दिया। एक निश्चित दिन पर उसने सब लोगों को पौधों को दिखलाने के लिए बुलाया और कहा कि 'कल प्रातःकाल पौधे मुक्ता उत्पन्न करेंगे और कल ही इन्हें काटा जायगा।'

सभी लोग पधारे। ओस की बूँदें जौ के पौधों और पत्तों पर मोती की तरह चमक रही थी। मंत्री ने कहा-'अब आप लोगों में से जो सर्वथा निरपराधी-दूध का धोया हो,इन मोतियों को काट ले। सावधान! यदि किसी ने कभी एक भी अपराध किया होगा तो ये मोती पानी बन कर गिर पड़ेंगे।'

सभी शान्त थे। मंत्री ने राजा को हाथ बढ़ाने के लिए कहा पर राजा समझ गया- सभी से अपराध होते हैं। मंत्री का कोई दोष था भी नहीं, यह तो दरबारियों का एक षडयंत्र मात्र था। मंत्री को अभियोग से मुक्त कर दिया गया।

शिक्षा- बुद्धि चातुर्य से सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

''लाभ और लोभ''

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ।
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि ण णिट्ठिदं।।

अर्थः- जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ बढ़ता है। लाभ से लोभ बढ़ता है। दो माशा सोने से पूरा होने वाला कार्य करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं से भी पूरा नहीं होता।

कोऽरुक्?

एक वैद्यराज किसी नगर को जा रहे थे, मार्ग में वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिये कुछ देर ठहर गये। वृक्ष पर एक पक्षी बैठा हुआ मधुर स्वर में ध्वनि कर रहा था। उसकी ध्वनि से 'कोऽरुक्, कोऽरुक्' शब्द ध्वनित होता था।

वैद्यराज ने समझा कि यह पक्षी मुझ से पूछ रहा है कि कःXअरुक्' (कोऽरुक्) अर्थात् नीरोग (रोग रहित स्वस्थ) कौन होता है?

इस पर वैद्यराज ने उत्तर दिया :-

हितभुक् मितभुक् शाक्भुक्, शतपदगामी च वामशायी च।

अविदित-मूत्रपुरीषः अहो! खगवर सोऽरुक् सोऽरुक्।।

अर्थात्- हे पक्षीराज! जो मनुष्य अच्छा बना हुआ (न जला, न कच्चा, न सड़ा), परिमित (जितना भूखा हो उतना), शाकाहारी (अन्न, शाक, फल दूध आदि का) भोजन करता है, प्रतिदिन कुछ दूर तक पैदल चलता-फिरता रहता है तथा बाएं करवट से सोता है और मल-पेशाब की बाधा होने पर उसे रोकता नहीं (ठीक समय पर मल विसर्जन एवं पेशाब किया करता है) यह मनुष्य निरोग रहता है।

स्वास्थ का यह संक्षेप सार प्रत्येक व्यक्ति को स्मरण रखना चाहिए।

शिक्षा- निरोगी ही साधना कर पाता है,अतः निरोगी बने रहो।

आदर्श दान

महाभारत की कथा है-

युद्ध विजय के बाद युधिष्ठिर महाराज ने एक बड़ा भारी यज्ञ किया उसमें हजारों ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। जिस स्थान पर ब्राह्मणों को भोजन कराया गया उस जगह युधिष्ठिर महाराज खड़े हुए कुछ लोगों से वार्ता कर रहे थे। वहीं एक नेवला जूठन में बार-बार लोट रहा था। नैवले ने महाराज से कहा- महाराज! एक गाँव में एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था उसके एक स्त्री और बेटा बहू थे इस प्रकार चार प्राणियों की उसकी गृहस्थी थी। बेचारे बहुत गरीब थे। खेतों पर से शिला बीन कर लाते और उससे अपना निर्वाह करते। एक बार तीन दिन के बाद उन्हें भोजन प्राप्त हुआ। शिला बीन कर जो अनाज उन्हें मिला उससे आठ रोटियां बना कर तथा दो-दो रोटियां अपने हिस्से की लेकर खाने बैठे। बैठे ही थे कि इतने में एक गरीब आदमी चिल्लाता हुआ आया कि- सात दिन से मुख में अनाज का दाना भी नहीं गया, भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं। उसकी दीनवाणी सुन ब्राह्मण को दया आ गई। अब उसने यह विचार कर कि अभी मुझे तो दो तीन ही दिन हुए हैं पर इस बेचारे को सात दिन हो गये हैं, अपनी दोनों रोटियां उसे दे दी। वह आदमी तृप्त नहीं हुआ। तब ब्राह्मण अपनी स्त्री की ओर देखने लगा। ब्राह्मण ने कहा- आप भूखे रहें और मैं भोजन करूँ यह कैसे हो सकता है यह कह कर उसने भी अपनी रोटियां उस भूखे को दे दी। वह फिर भी तृप्त नहीं हुआ। तब ब्राह्मण ब्राह्मणी लड़के की ओर देखने लगे। लड़के ने कहा- हमारे वृद्ध माता-पिता भूखे रहें और मैं भोजन करूँ यह कैसे हो सकता है? यह कह उसने भी अपनी रोटियां उसी भूखे को खिला दी। वह फिर भी तृप्त नहीं हुआ तब तीनों बहुरानी की ओर देखने

लगे। उसने भी कहा- यद्यपि में आपके घर उत्पन्न नहीं हुई हूँ तथापि आप लोगों के सहवास से मुझ में भी कुछ उदारता और दयालुता आई है। यह कहकर उसने भी अपनी रोटियाँ उसे खिला दी। वह भूखा आदमी तृप्त होकर आशीर्वाद देता हुआ चला गया। चारों के चारों भूखे रह गये। महाराज! जिस स्थान पर बैठ कर उस सात दिन के भूखे ने भोजन किया था, मैं वहाँ से निकला तो मेरे नीचे का भाग स्वर्णमय हो गया। अब आधा स्वर्णमय और आधा चर्ममय होने से मुझे अपना रूप अच्छा नहीं लगता। इसी बीच मैंने सुना कि महाराज के यहाँ यज्ञ में हजारों ब्राह्मणों का भोजन हुआ है। वहाँ जाकर लोटूँगा तो पूरा स्वर्णमय हो जाऊँगा। यही सुन कर मैं यहाँ आया और बड़ी देर से जूठन में लोट रहा हूँ परन्तु मेरा शेष शरीर स्वर्णमय नहीं हो रहा है।

होता भी कैसे? क्योंकि **सत्य श्रद्धा से निरभिमान पूर्वक दिया हुआ सत्पात्र दान ही स्व-पर का हितकारी होता है।**

शिक्षा- दान देते समय अपने भावों को टटोलें।

विनम्रता

एक दिन एक राजा घोड़े पर चढ़कर शाम को हवाखोरी के लिये बाहर निकले। एक जगह सड़क पर देखा कि कुछ मजदूर एक भारी लट्ठे को छत पर चढ़ाना चाहते हैं। यदि एक आदमी और हाथ लगाता तो लट्ठा आसानी से छत पर चढ़ जाता। जमादर खड़ा-खड़ा उन मजदूरों को साहस दे रहा था। राजा ने जमादार से कहा- 'तुम हाथ क्यों नहीं लगा देते?' जमादार ने लाल पीली आँखें निकाल कर जवाब दिया- 'मैं जमादार हूँ। मेरा काम मजदूरों से काम लेना है। न कि खुद हाथ लगाना।'

'अच्छा, यह बात है?' कहकर राजा घोड़े से कूद पड़े और लट्ठे में भरपूर शक्ति के साथ दोनों हाथ लगा दिये। लट्ठा ऊपर पहुँच गया तब राजा ने जमादार से कहा- 'सलाम जमादार साहब! यदि फिर कभी किसी लट्ठे में हाथ लगाने के लिये एक आदमी की जरूरत पड़े तो मुझे बुला लेना। मैं इस देश का राजा हूँ। यह सुनते ही जमादार दौड़ा और राजा के चरणों पर गिर कर रोने लगा। जब उसने क्षमा मांगी, तब राजा ने कहा-'तुम गुरूर का अभ्यास कर रहे हो और मैं नम्रता में मानवता का दर्शन कर रहा हूँ। इस शर्त पर क्षमा किया कि भविष्य में कभी मानवता का निरादार न होने पाये।'

शिक्षा- पद बढ़ते ही नम्रता बढ़ना और गुरूर घटना चाहिए।

बलि के लिए दलील

एक बार बापू (महात्मा गांधी) बिहार प्रान्त के चम्पारन जिले के किसी गाँव में ठहरे हुए थे। एक दिन एकाएक उनकी निगाह एक जुलूस पर पड़ी। जुलूस के आगे-आगे एक हृष्ट-पुष्ट बकरा था, जिसके माथे पर तो टीका लग रहा था और गले में फूलों की माला।

जुलूस रोक कर बापू ने बड़ी नम्रता से पूछा- भाई यह जुलूस कहाँ और किस उद्देश्य से जा रहा है?

लोगों के मुँह यह सुनकर कि जुलूस अमुक देवी के मन्दिर तक जायेगा, बापू का माथा ठनका और उनका हृदय काँप उठा।

बापू ने साहस करके फिर पूछा- इस बेचारे बकरे का उस मन्दिर से क्या सम्बंध है? उत्तर मिला- देवी को प्रसन्न करने के लिये, यही बकरा उन्हें बलि (भेंट) दिया जायगा।

जुलूस आगे बढ़ा और बापू भी उसके साथ ही मन्दिर तक गये। बलि की विधि प्रारम्भ होने से पूर्व ही, भीड़ का ध्यान आकर्षित करते हुए बापू ने कहा भला इस गूंगे, निरपराध पशु की बलि देकर अपनी देवी को प्रसन्न करना कहाँ का धर्म है? भाइयो! क्या देवी हम आप जैसे भारी भरकम शरीर वाले मनुष्यों के खून से प्रसन्न नहीं होगी? हमारा खून तो बकरे के खून से कही अच्छा और स्वादिष्ट रहेगा।

बापू के इस दलील का उत्तर किसी से देते न बना। वहाँ एक बार तो एकदम सन्नाटा छा गया।

इतने ही में सन्नाटा भंग करता हुआ एक व्यक्ति आगे बढ़कर बोला- बापू! तो आप ही बताइये ना, धर्म किसे कहते हैं?

बाबू बोले- प्राणियों पर दया करना, किसी भी प्राणी को न सताना अपनी ही आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को समझना, यही सच्चा धर्म है।

अब भी अपनी वाणी का, भीड़ पर कुछ भी असर न होते देख कर बापू ने गंभीर मुद्रा में कहा- क्या आप में से कोई भी इस देवी पर बलि चढ़ने के लिये आगे आ सकता है? यदि नहीं तो मैं स्वयं इस कार्य के लिए तैयार हूँ।

अब की बार बापू की वाणी का असर भीड़ पर जादू का सा हुआ वे बापू से उचित आदेश पाने की प्रतीक्षा में थे।

बापू ने भीड़ से अन्तिम बार प्रश्न किया- अब आप लोग क्या चाहेंगे?

उत्तर मिला- इस निरपराध बकरे को मुक्ति देना।

बापू- इसके लिए आप सबको धन्यवाद है।

नतीजा यह हुआ कि बड़ी शांति के साथ भीड़ बकरे को लेकर वहाँ से सरकने लगी।

शिक्षा- पुण्य बलि से नहीं दया से बढ़ता है।

समझौता

महाकवि पं. बनारसी दास जी अनेक विरोधियों का सामना करते हुए तथा ९ पुत्रों की मृत्यु हो जाने पर भी हमेशा खुश रहते थे। यह देखकर एक भाई ने पूछा- आप इन कठिनाइयों में भी हमेशा खुश कैसे रहते हैं? महाकवि ने उत्तर दिया- भाई! इनसे अपना क्या हानि-लाभ? तथा इन अनिवार्य घटनाओं से तो मैंने समझौता कर लिया है।

शिक्षा- जीवन के हर कर्मोदय में समझौता आवश्यक है।

"संसार-दुःख है"

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ की संति जंतवो ।।

अर्थः- जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, रोग दुःख है और मृत्यु दुःख है। अहो! संसार दुःख ही है, जिसमें जीव क्लेश पा रहे हैं।

सहनशीलता

स्वभावतः जंगली भैंसा बड़ा भयंकर और क्रुद्ध होता है। किंतु एक भैंसा इस पर्याय में भी बहुत शांत रहता था। उसके शांत रहने के कारण एक बन्दर उसे बहुत परेशान किया करता था। कभी सींगों पर लटक जाता, कभी पूँछ खींचता और कभी पीठ पर उछल कूद करता।

एक दिन देव ने भैंसे से कहा- 'यह बन्दर तुम को बहुत परेशान करता है, तुम इसको सबक क्यों नहीं सिखा देते?'

भैंसे ने कहा- **'लोग अपने से शक्तिशाली के अपराध तो मजबूर होकर सहन कर लेते हैं, किन्तु खूबी तो अपने से निर्बल (कमजोर) का अपराध सहन करने में ही है।** अतः मैं उसी का अभ्यास कर रहा हूँ।'

शिक्षा- भगवत्ता प्रकट करना है तो सहनशील बनो।

उत्तम क्षमा

महाभारत समाप्त हो चुका था। अश्वत्थामा ने धौके से द्रोपदी से पाँचों पुत्रों को सोते समय मार डाला और पाण्डवों के डेरे में रात्रि को रानियों के सोते समय आग लगा दी। अर्जुन ने अश्वत्थामा को पकड़कर द्रोपदी के सन्मुख उपस्थित किया और उससे कहा- देवी! जिस प्रकार तुम कहो उसी प्रकार इस दुष्ट की दुर्दशा करके इसे मौत के घाट उतारा जाये।

भीम ने क्रोध से लाल होकर कहा- जिस दुष्ट ने निरपराध छोटे-छोटे बच्चों की हत्या की हो, उसकी तो बोटी-बोटी काट कर कौवों को खिला देना चाहिये।

अब सभी लोग टक-टकी लगा कर द्रोपदी की ओर देख रहे थे। द्रोपदी इतना सुनकर और अपने पाँचों पुत्रों की लाशें सामने पड़ी देख रो पड़ी। पाण्डु शिविर के सभी मनुष्यों में अश्वत्थामा के इस कुकर्म की कहानी सुनकर और उसकी घृणा और प्रतिशोध की अग्नि जल रही थी। इतने में ही नीरवता को भंग करती हुई द्रोपदी बोल उठी-

'अब मेरे पुत्र तो मर ही चुके हैं, मैं उनके शोक में विह्वल हो रही हूँ तथा वे किसी भी प्रकार अब जिन्दा नहीं हो सकते, यदि अवश्यत्थामा को मार भी दिया गया तो मेरी तरह इसकी माता भी करुण क्रन्दन करते हुए अत्यन्त दुःखी होगी, क्योंकि मेरी तरह उसमें भी तो मातृ स्नेह स्वाभाविक है। अतः मैं दुर्जन के साथ क्यों दुर्जन बनूँ। मैं इसे हृदय से क्षमा करती हूँ। यह सुनकर सभी आश्चर्य चकित रह गये। द्रोपदी की यह क्षमा आ चन्द्र दिवाकर कान्तिमान रहेगी।'

शिक्षा- दुर्जन को देख दुर्जन मत बनो।

शरणागत की रक्षा

श्री शान्तिनाथ भगवान् अपने पूर्व भव में मेघरथ नाम के राजा थे। एक दिन राजा मेघरथ राज सिंहासन पर बैठे थे कि इतने में एक शिकारी के डर से उड़ता हुआ कबूतर राजा की गोद में आ बैठा। पीछे-पीछे शिकारी राजभवन में आ पहुँचा और राजा से अपने शिकार की मांग करने लगा।

राजा ने कहा- कबूतर तो मेरी शरण में आ चुका है अब उसे नहीं दिया जा सकता। शिकारी बोला- राजन्! आप न्यायी होकर भी मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं। दूसरे की वस्तु हड़प लेना कहाँ का न्याय है। मेरा कबूतर दे दें। या फिर उतना मांस कहीं से लाकर दें। राजा ने उसके बदले में अपने शरीर का मांस देना स्वीकार कर लिया। एक तराजू के पलड़े पर कबूतर रखा गया दूसरे पलड़े पर राजा ने अपने शरीर का माँस चढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। शरीर का बहुत सा माँस कट जाने पर भी पलड़ा बराबर नहीं हो रहा था। उसी समय शिकारी के स्थान पर एक देव ने प्रकट होकर कहा-महाराज! मैं तो आपकी दया की परीक्षा कर रहा था। मुझे क्षमा प्रदान करें। राजा का शरीर पहले जैसा हो गया।

शिक्षा- शरण में आए की रक्षा करना मानवता/दया का लक्षण है।

अब नहीं करूँगी भूल

अग्नि परीक्षा हो जाने के बाद श्रीरामचन्द्र जी ने सीता से कहा- देवी! अब मेरे सब अपराध क्षमा करके चलो, राज भवन में प्रवेश करो। तब सीता ने कहा- स्वामिन्! क्या आप चाहते हैं कि जो मैंने अपने जीवन में चार बड़ी भूलें की हैं, उन्हीं भूलों को हमेशा दुहराती जाऊँ।

तब राम ने पूछा- देवी! वे चारों भूलें कौन-सी हैं? इस पर सीता का कहना था- पहली भूल मुझसे विवाह के समय हुई। जब वरण करने के बाद युद्ध छिड़ गया तभी मैंने आर्यिका के व्रत लेकर आत्म-कल्याण किया होता तो आज यह कुछ भी न देखना पड़ता। दूसरी जब प्रेमवश वनवास में साथ गई, तीसरी जब रावण हर कर ले गया और चौथी जब वन से घर आई थी। यदि इन्हीं दिनों में आत्म-कल्याण किया होता तो सारी झंझटों से छूट जाती।

क्या वही गलती आप मुझ से फिर करवाना चाहते हैं? इतना कह कर सबसे क्षमा याचना कर एक सफेद साड़ी पहन कर सीताजी ने दीक्षा लेने के लिए वन की ओर प्रस्थान कर दिया। वे महान् तपस्वनी बन कर उच्च पदवी को प्राप्त हुईं।

शिक्षा- सुखी रहना है तो पहली ठोकर में ही सुधर जाओ।

वास्तविक त्याग का मार्ग

उत्तरप्रदेश के राजनगर में देवशरण नामक बड़े धर्मात्मा पुरुष थे। एक बार उन्हें सन्निपात हो गया। अवस्था मरणासन्न हो गई। तब उन्होंने एक ब्रह्मचारी जी के सहयोग के समाधिमरण धारण कर लिया।

सौभाग्य से वे अच्छे हो गये। अब उनकी पत्नी हर प्रकार से सेवा तो करती किंतु उसका स्पर्श नहीं करती थी। एक दिन उन्होंने इसका कारण पूछा तो पत्नी से कहा- आप तो व्रती पुरुष हैं, क्योंकि आपने संन्यास लेने के समय सब का त्याग कर ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था।

देवशरण बोले तब तो मुझे घर पर भी नहीं रहना चाहिये। पत्नी ने कहा मार्ग तो यही है। यह सुन कर उन्होंने घर त्याग कर क्षुल्लक भेष धारण कर लिया। एक समय में वे संघ के साथ निकटवर्ती गाँव में ठहरे हुए थे। उनके वैराग्य और विद्वता की जनता में बड़ी चर्चा थी। अतः राजनगर से उनकी पूर्व अवस्था वाली पत्नी भी दर्शनार्थ पहुँची। उसने क्षुल्लक जी को नहीं पहचाना किन्तु क्षुल्लकजी ने अपनी पत्नी को पहिचान कर कहा- अरी तू कब आई थी? पत्नी ने कहा- आप मुझे अभी तक भूले नहीं हैं। क्षुल्लक जी को सावधानी का कोड़ा लगा और तभी से उन्होंने आजीवन मौनव्रत धारण कर लिया।

शिक्षा- छोड़ने के साथ-साथ छूटो भी।

कोई किसी का नहीं

एक हाराज भोज की राजधानी धार नगरी में एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। दुर्दैव से विद्वान होने पर भी उसको दरिद्रता ने आ घेरा। एक दिन वह महाराज भोज के राजभवन में चोरी करने की इच्छा से जा पहुँचा। किन्तु वह कुछ उठाने का प्रयत्न करता तो उसे विवेक ऐसा करने से रोक देता। 'क्या चुराऊं, क्या न चुराऊं' उसकी इसी उधेड़-बुन में रात्रि समाप्त हो गई।

प्रातः राज सेवकों की आहट सुन कर वह बेचारा राजा भोज की शय्या के नीचे जाकर छिप गया। नियमानुसार महाराज के जागरण के समय समस्त रानियाँ और दासियाँ सुसज्जित होकर जल की झारी और दूसरे उपकरण लेकर शैय्या के समीप खड़ी हुईं। राज्याधिकारी परिवार के सदस्य और सेवकजन प्रातःकालीन अभिवादन के लिये यथाविधि प्रस्तुत हुए। स्वागत के लिये सुसज्जित हाथी घोड़े राजद्वार के बाहर प्रस्तुत हुए।

उसी समय राजा भोज जगे और उन्होंने यह सब देखकर हर्ष विभोर हो निम्न श्लोक बनाया-

चेतोहराः युवतयः सुहृदानुकूलाः,
सद्बान्धवा प्रणयगर्वगिरश्च भृत्याः।
चालन्ति दन्ति निवहास्तरलास्तुरंगा,

अर्थात्- मेरे पास देवाङ्गना समान रानियाँ, आज्ञाकारी मित्र, परिवार और सेवक हैं तथा चिंघाड़ते हुए मस्त हाथ और हिनहिनाते हुए घोड़े आदि सब सुख सामग्री है।

इन तीनों पदों को भोज बार-बार दुहरा रहे थे किन्तु चौथा पद ठीक नहीं बन पा रहा था। उसी समय यह जानकर शैय्या के नीचे छिपे हुए ब्राह्मण ने वह श्लोक का चौथा चरण भी पूरा कर दिया- वह गुनगुनाते लगा।

सम्मीलने नयनयोर्नहि किन्चिदस्ति।

अर्थात्-**नेत्र बन्द हो जाने पर यह सबकुछ ठाठ काम नहीं आते।**

महाराज यह सुनकर चौंके। उनका मद चूर-चूर हो गया। उन्होंने ब्राह्मण को बहुत सा धन पारितोषिक में दिया।

शिक्षा- सब स्वार्थ के साथी है, नेत्र बंद होते ही सब पराये हैं।

उन्नति में बाधक विकल्प

भगवान् ऋषभदेव के बड़े पुत्र भरत चक्रवर्ती जब विश्व विजय कर लौटे तो सुदर्शनचक्र ने नगर में प्रवेश नहीं किया।

पता चला कि छोटे भाई बाहुबली ने आधीनता स्वीकार नहीं की है। बाहुबली के पास आधीनता स्वीकार करने के लिये सन्देश भेजा किंतु इन्होंने किसी की भी आधीनता स्वीकार करने की मनाई कर दी। तब भरतजी ने अपने लघु भाई बाहुबली को युद्ध के लिये ललकारा। मंत्रियों की सलाह से नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध करने का निश्चय किया गया। किंतु भरत चक्रवर्ती अपने लघुभ्राता बाहुबली से तीनों युद्ध में हार गये।

अब भरत ने अपने अन्तिम शस्त्र सुदर्शन चक्र को भी छोड़ दिया। किन्तु यह चक्र कुटुम्ब वाले का घात करता नहीं, अतः बाहुबली की तीन प्रदक्षिणा देकर वापिस लौट आया।

'शारीरिक शक्ति में मद में आकर एक भाई दूसरे भाई का जानी दुश्मन हो सकता है।' यह संसार का दृश्य बाहुबली के मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा। उन्हें वैराग्य हो गया और उसी समय वे राज और ताज को छोड़कर वैरागी बन तपस्या करने लगे। बारह महिने तक बाहुबली ने दुर्द्धर तप किया। शरीर पर बेलें चढ़ गई, कीड़ों ने चारों ओर मिट्टी का ढेर लगा दिया, पक्षियों ने घोसले बना लिए पर वे सर्दी, गर्मी, वर्षा, डांस, मच्छर आदि की बाधा सहन करते हुए भी निश्चल खड़े ही रहे। इतना होने पर भी बाहुबलि को केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि उनके मन में एक वाक्या कांटे की तरह मन को दुखिःत कर रहा था कि मैंने भाई का अपमान किया है।

भरत चक्रवर्ती ने आकर बाहुबली की वंदना पूजा कर प्रार्थना की- 'स्वामिन्! यह पृथ्वी किसी की होकर नहीं रही और न ही इस पृथ्वी पर किसी का सम्मान-अपमान होता है।'

इतना सुनते हो बाहुबली का विकल्प छूट गया। उनको तत्काल केवलज्ञान हो गया। उनकी आत्मसाधना सफल हुई।

शिक्षा- विकल्प रहित साधना आत्मकल्याण में सहायक है।

''प्रीति के लक्षण''

ददाति प्रति-गृह्णाति, गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुक्ते भोजयते चैव, षड्विधं प्रीति-लक्षणम्।।

अर्थः- देना, लेना, गुप्त बात कहना, गुप्त बात पूछना, भोजन करना और कराना; ये छह प्रीति के लक्षण है।

ढूंढ़ रहा हूँ

एक वृद्ध कमर झुकाये लाठी के सहारे हांपता हुआ धीरे-धीरे जा रहा था। उसी समय एक नवयुवक ने इसकी यह हालत देखकर व्यंग मिश्रित ध्वनि से हंसते हुए कहा- बाबा क्या ढूंढ़ते जा रहे हो? वृद्ध अनुभवी था। वह जीवन के कितने ही चढ़ाव उतार देख चुका था। दसियों सर्दी, गर्मी और बरसातों को झेलते हुए उसके केश पक गये थे। उसे युवक के व्यंग की तिक्तता समझते देर न लगी।

यह बड़े प्यार से मुस्कराते हुए स्नेह संचित स्वर में सलाह देते हुए बोला- बेटा! मेरा यौवन रूपी बहुमूल्य रत्न गुम गया है। उसे ही ढूंढ़ता फिर रहा हूँ। पर देखो तुम संभल कर रहना। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें भी कभी यह दिन देखना पड़े।

युवक अपनी अनभिज्ञता एवं अनुभव हीनता पर लज्जित होता हुआ आगे बढ़ गया।

शिक्षा- किसी की भी अवस्था का मजाक मत उड़ाना।

महानता

श्री पंडितजी टोडरमलजी का महाराज जयपुर नरेश से घनिष्ठ प्रेम था। जयपुर नरेश उनका सम्मान किया करते थे। एकदिन पंडितजी राजा से मिलने राज दरबार में जा रहे थे, पहरे पर बिल्कुल नया सिपाही था, उसका ध्यान दूसरी ओर था। इतने में पंडितजी राज भवन में चले ही गये। सिपाही ने देखा तो उसे बड़ा गुस्सा आया कि बिना पूछे यह कौन चला गया और यह कहते हुए एक चांटा मार दिया कि तुम बिना पूछे भीतर क्यों आ गये?

पंडित चुपचाप वापिस चले आये। दूसरे दिन उससे पूछ कर गये राजा के पास जाकर पंडित ने कहा- महाराज! आपका नया सिपाही बड़ा योग्य ईमानदार और कर्तव्य परायण है। उसे कुछ पारितोषिक देना चाहता हूँ। महाराजा ने खुश होकर सिपाही को बुलाया। जब सिपाही ने पंडित जी को राजा के पास बैठा देखा तो वह कांप उठा। राजा ने कहा- पहरेदार! पंडित जी तुझ पर बहुत खुश हैं और कुछ ईनाम देना चाहते हैं। सिपाही ने सोचा- महाराज व्यंग कर रहे हैं। वह कुछ बोल नहीं सका।

उसी समय पंडितजी ने उसे थपथपाते हुए ईनाम दिया। सिपाही ने पं.जी के चरणों में गिरकर क्षमा माँगी।

शिक्षा- महान वही बनपाता है जो महानता धारण करता है।

दुःखों का कारण

एक गरीब मनुष्य था। वह किन्हीं महात्माजी द्वारा प्रदत्त मन्त्र की आराधना किया करता। एक बार उसकी मंत्राराधना से प्रसन्न होकर एक देवी ने आकर कहा- बोल क्या चाहता है? देवी को सामने खड़े देख बेचारा घबड़ा गया। वह बोला- देवीजी! कल सबेरे मांग लूंगा। देवी ने कहा- अच्छा।

वह गरीब मनुष्य सायंकाल से ही विचारने लगा कि देवीजी से क्या मांगा जाये। रहने के लिये घर नहीं है इसलिये यही मांगा जाये। फिर सोचता है कि जब देवीजी मुँह मांगा वरदान देने के लिये तैयार हैं तब घर ही क्यों मांगा जाये? देखो ये जमींदार हैं, गाँव के सब लोगों पर रोब गांठते हैं, इसलिये मैं भी जमींदार हो जाऊँ तो अच्छा है। यह विचारकर उसने जमींदारी मांगने का निर्णय कर लिया। फिर सोचता है आखिर जब लगान भरने का समय आता जब ये जमींदार भी तहसीलदार की आरजू मिन्नत करते हैं, इसलिए उनसे बड़ा तो तहसीलदार है, वही क्यों न बन जाऊँ? इस तरह विचार कर वह तहसीलदार बनने की आकांक्षा करने लगा। कुछ देर बाद उसे फिर जिलाधीश का स्मरण आया तो उसे तहसीलदार का पद फीका दिखने लगा। इस प्रकार एक के बाद एक नवीन से नवीन इच्छा बढ़ती ही गई। वह निर्णय नहीं कर पाया कि क्या मांगा जाये? सारी रात इसी चिन्ता में बीत गई। सवेरा हुआ देवीजी ने आकर कहा- बोल क्या चाहता है? वह उत्तर देता है- देवी जी कुछ नहीं चाहिये। क्यों भाई? वह बोला- देखिये- देवीजी! जब पास में सम्पत्ति आई नहीं, आने की आशा मात्र दिखी, तब तो रात्री भर नींद नहीं आई और यदि कदाचित् आ गई तो फिर नींद तो एकदम विदा हो ही जायेगी। साथ ही न मालूम कौन-कौन सी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा, इसलिये देवीजी! मैं तो जैसा हूँ वैसा ही अच्छा।

देवीजी वहाँ से विदा हो गई। वह गरीब मनुष्य पहले की तरह अपनी टूटी-फूटी घास-फूस की झोंपड़ी रह कर निराकुलता पूर्वक जीवन बिताने लगा। वास्तव में **परिग्रह ही दुःखों का कारण है जो कि दुनियाँ के प्राणी को क्षण भर चैन नहीं लेने देता।**

शिक्षा- जीवन का आनंद आकांक्षाओं से भंग होता है।

''शिक्षाशील का लक्षण''

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ।
अहस्सिरे सया दंते, ण य मम्ममुदाहरे।।

णासीले णवि विसीले, ण सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ।।

अर्थः- 1. हँसी-मजाक नहीं करना, 2. सदा इंद्रिय-मन का दमन करना, 3. किसी का रहस्योद्घाटन न करना, 4. आचरण विहीन न होना, 5. दोषों से कलंकित न होना 6. अति रसलोलुप न होना, 7. अक्रोधी रहना तथा 8. सत्य में लीन होना; इन आठ कारणों से मानव शिक्षाशील कहा जाता है।

त्याग से बन्धन मुक्त

एक ढोंगी साधु था। उसने एक चतुर तोता पाल रखा था। तोते को साधु ने राम-राम, विठ्ठल-विठ्ठल सिखलाया। वहाँ एक जैन ब्रह्मचारी आया। उस साधु ने सोचा कि यह ब्रह्मचारी विद्वान् है, इसलिए उसने कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की। ब्रह्मचारी जी ने कहा- **''त्याग के द्वारा बन्धन से छूट जाओगे।''** तोते के कान ये शब्द पहुँचे। उसने विचार कर एक घण्टे के लिए आहार पानी छोड़ दिया। वह मुर्दे के समान हो गया। साधु ने तोते को मृत सदृश समझ पिंजरे का द्वार खोल वृक्ष के नीचे छोड़ दिया। तोता चुपचाप पड़ा रहा। एक घण्टा पूरा होने पर वह तोता उड़ गया। वह बन्धन से छूट गया। एक घण्टे के त्याग के द्वारा पराधीनता दूर हो गई। उसने साधु से कहा- 'तुम सच्चे त्याग को पकड़ लोगे तो तुम्हारा बन्धन दूर हो जायेगा। बन्धन से छूटकर सच्चा आनन्द पाने के लिए त्याग भाव को अपनाना चाहिये।'

शिक्षा- त्यागोगे तभी कर्मबंधन तुम्हें त्यागेगा।

मनहूस कौन?

एक राजा के दरबार में किसी ने कहा कि नगर का सबसे मनहूस आदमी देवीदयाल है। हर बात की परख करने का आदी वह राजा भला कैसे चुप रहता? वह बोला- 'देवीदयाल हाजिर किया जाय।'

उसके आने पर राजा ने स्वयं ही प्रयोग करना चाहा। देवीदयाल रात भर राजा के कमरे में सोया। सुबह उठकर राजा ने उसी का मुँह देखा।

संयोग की बात कि ज्यों ही राजा नाश्ते के लिये बैठा, सीमा के युद्ध की बुरी खबर लेकर दूत पहुँचा। राजा नाश्ता न कर सका। दोपहर के खाने के वक्त तक सलाह मशविरा चलता रहा और शाम को जब राजा खाने गया तो उसकी चहेती बेगम बीमार पड़ गई। भोजन कैसे करता?

दूसरे दिन उसने दरबार में हुक्म दिया, 'लोग सच कहते हैं, देवीदयाल बहुत मनहूस आदमी है। हम कल खाना नहीं खा सके, इसका मुँह देखकर। चाहते थे कि इसे फांसी दें पर इसके बाल बच्चों पर रहम खाकर इसे देश निकाला ही दे रहे हैं।'

दरबार में सन्नाटा छा गया। देवीदयाल फिर भी खुश था। उसे मंत्री ने सबेरे ही मन्त्र दे दिया था।

'कुछ कहना है तुम्हें देवीदयाल।'

'हाँ राजन्! एक व्यक्ति मुझसे भी ज्यादा मनहूस है। हुजूर! उसको भी माकूल सजा दी जाय।'

'वह कौन है?'

'राजन् आप।' दरबार में फिर सन्नाटा छा गया। लेकिन दूसरे ही क्षण सेनापतियों ने तलवार खींच ली।

सभी खामोश रहे, राजा ने कहा, 'बोलो देवीदयाल तुमने ऐसा क्यों कहा?'

'हे राजन्! गुस्ताखी माफ हो। आप ने मेरा मुँह देखा तो सिर्फ खाना ही न मिला, पर सरकार मैंने भी तो आपका ही मुँह देखा था जिसके कारण मेरी और बुजुर्गों की निशानी मेरा घर बार सभी छिन रहा है। मैं दर-दर की ठोकर खाने को मजबूर हो गया हूँ।'

दूसरे ही क्षण राजा ने अपनी मोतियों की माला देवीदयाल की ओर फेंक दी। बोला- आराम से यहीं रहो। तुमने हमारी आँखें खोल दीं। **अन्ध विश्वासों से ही वहम पैदा होते हैं।** न जाने कितनी बार हमें झंझटों में खाना नहीं नसीब हुआ पर तब तो हमने किसी को भी देश से नहीं निकाला।' मंत्री भी प्रसन्न हो गया।

शिक्षा- अंधविश्वास में पड़कर अंधे मत बनना।

बुराई के बदले भलाई

एक बाबू साहब अपने बंगले में बैठे थे। एक भूखा प्यासा भील वहाँ आया। भूख के मारे उसकी जान निकल रही थी। उसने खाने के लिये कुछ माँगा। बाबू साहब ने उसे झिड़क दिया और कहा 'चल हट, यहाँ तेरे खाने के लिये कुछ भी नहीं हैं।' भील ने कहा- 'थोड़ा पानी ही पिला दीजिये' इस पर बाबू साहब बोले- 'उठता है कि हड्डी तोड़ दूँ।' बेचारा भील चल दिया।

कुछ दिनों बाद बाबू साहब जंगल में शिकार खेलने गये। राह भूल गये, भटकते-भटकते रात बीत गई। एक झोपड़ी के पास गये। झोपड़ी के मालिक ने उनको अपने घर पर टिका लिया जो कुछ उससे बना उनको खिलाया। घास पर कम्बल बिछा कर उनको सुलाया। सबेरा होते उसे पहुँचाया। इस समय भील ने कहा, 'मुझे आप पहिचानते हैं।' दोनों की चार आँखें हुई। बाबू साहब समझ गये कि एक दिन इसी को मैंने झिड़क दिया था। उनके मुँह से बात न निकली। इस पर भील ने कहा 'यदि आपके पास कोई भूखा प्यासा आ जाय तो उसे खिलाईये, पिलाइये झिड़क कर न भगाइये।'

शिक्षा- गरीब हो या कोई भी किसी का भी तिरस्कार न करें।

बुद्धि चातुर्य

धर्मपुर नगर के राजा का नाम वरधर्म था और उसकी पत्नी का नाम वरधर्मा। जयदेव नाम का उसका मंत्री था। एक बार वे राजा और मंत्री अपने दल बल के साथ एक शक्तिशाली राजा को जीतने चले। थोड़े ही दिनों में जब उनका शत्रु परास्त हो गया तो वे लौटे। प्रजाजनों ने ध्वजाओं और वन्दनवारों से नगर के बाहर सजावट की। तोरणों से नगर का द्वार सजाया, परन्तु ज्योंहि नगर की बाहरी दिवाल के प्रमुख द्वार से राजा ने प्रवेश करना चाहा, वह गिर गया। राजा ने सोचा कि यह तो बड़ा अपशकुन है। द्वार फिर बनाया गया पर कई बार बनने पर भी वह द्वार बार-बार गिर जाता।

मंत्री ने सुझाव दिया कि यह कोई देवी का प्रकोप है। एक व्यक्ति की बलि देकर देखें यह ठीक रहेगा।

चलो यही सही -राजा ने कहा।

पर बलि किसकी दें? यह थी समस्या।

कुछ नागरिकों ने कहा- 'महाराज! यह हम पर छोड़ दीजिये' उन लोगों ने घोषणा की 'जो व्यक्ति बलि की खातिर मनुष्य देगा उसे एक लाख दीनार देंगे।'

यह घोषणा एक ब्राह्मण ने भी सुनी जिसके सात पुत्र थे। वह बड़ा लालची और क्रोधी था। दरिद्र भी था। उसकी पत्नी वैसी ही थी।

उन लोगों ने घोषणा सुनी तो पत्नी ने सुझाव दिया कि अपने सात पुत्र हैं। क्यों न इनमें से एक देकर एक लाख मुद्रायें प्राप्त करें? 'जरूर करें'। पति भी खुश हो गया था। और उन्होंने एक लाख मुद्रायें लेकर सबसे छोटा पुत्र दे दिया।

जब लोग उस ब्राह्मण पुत्र को दरवाजे के निकट लाये जहाँ राजा मंत्री सभी खड़े थे तो वह हसने लगा।

राजा ने पूछा- 'बालक कुछ क्षणों में तेरी बलि दी जाने वाली है। तू हस क्यों रहा है?'

और क्या करूँ महाराज! बच्चे को माँ मारे तो पिता के पास जाता है और पिता मारे तो माँ के पास जाता है। दोनों मारे तो पुरवासियों से उसे पुकार करनी पड़ती है और वहाँ भी सुनवाई न हो तो राजा अवश्य ही न्याय करता है। यहाँ तो बाप, पुरवासी और राजा सभी मेरी नन्ही सी जान लेने पर उतारू हैं। किससे प्रार्थना करूँ। बस यही सोच कर मुझे हसी आ रही है। लज्जित हो राजा ने उसे छोड़ दिया द्वार फिर नहीं गिरा।

शिक्षा- जो संकटों में भी मुस्कुराता है, उससे डरकर संकट भी भाग जाता है।

शिक्षाप्रद मूर्तियाँ

एक कुशल मूर्तिकार सोने की चार मूर्तियां बनाकर राजा को बेचने के लिए गया। वे चारों ही आकार प्रकार और सुन्दरता में एक सी थी, किन्तु मूल्य सबका अलग-अलग था। राजा ने उनकी विशेषता खोजने के लिये एक अनुभवी को बुलाया। उसने बताया महाराज! एक मूर्ति के कान में छिद्र नहीं, दूसरी मूर्ति के एक कान का छिद्र दूसरे कान से निकला है। तीसरे के कान छिद्र मुख तक हैं और चौथी मूर्ति का छिद्र कान से लेकर पेट तक है। परीक्षक ने कहा- चौथी मूर्ति इसीलिये कीमती है। ये सभी मूर्तियाँ शिक्षा दे रही हैं- कुछ लोग धर्म की बात सुनते ही नहीं हैं। कोई सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं। तीसरे सुनकर मुँह से निकाल देते हैं और चौथे सुनकर धारणा करते हैं।

शिक्षा- सुनने के साथ-साथ गुनना भी प्रारंभ करो।

"अनित्यता"

जा जा वज्जइ रयणी, ण सा पडिणियत्तइ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ।।

अर्थः- जो जो रात्रि बीत रही है, वह लौटकर नहीं आर्त अधर्म करनेवाले की रात्रियाँ निष्फल चली जाती है?

अंतरावलोकन

एक राजा के लड़का था। वह हमेशा गरीबों के साथ गली-गली फिरा करता। गरीबों और भिखारियों के साथ दोस्ती किया करता।

उसका मन बदलने के लिये राजा ने बहुत कोशिश की, पर वह न बदला। आखिर उसे गुस्सा आ गया, उसने हुक्म दिया-'न मालूम यह कमबख्त मेरे यहाँ क्यों पैदा हुआ है, इसे ले जाकर फांसी पर चढ़ा दो।'

राजकुमार ने पिता से कहा- 'मुझे थोड़ा समय दीजिये, फिर मुझे चाहें तो फांसी पर चढ़वा दीजिये।' राजा इसके लिये मान गया।

राजकुमार कहीं जाकर तीन सन्दूक ले आया- एक सोने का, दूसरा चाँदी का और तीसरा लकड़ी का था। 'इनमें से कौन-सा सब से अच्छा है। क्या कोई बता सकता है'- राजकुमार ने दरबारियों से पूछा। सबने कहा सोने का सन्दूक सबसे अच्छा है, इसके बाद चाँदी का और सबसे खराब लकड़ी का। राजा ने तीनों सन्दूक खोले, सोने के सन्दूक में बिच्छू व सांप वगैरह थे। चाँदी के सन्दूक में कंकड़ पत्थर थे तथा लकड़ी के सन्दूक में हीरे मोती जवाहरात थे।

'ऊपरी चमक देख भ्रम में न पड़िये। आदमी भी ऐसे ही होते हैं, यह न सोचो कि गरीब सभी खराब हैं और धनी अच्छे'- राजकुमार ने कहा। राजा ने उसे माफ कर दिया।

शिक्षा- मित्रता धनहीन से की जा सकती है, पर धर्महीन से नहीं।

अद्वितीय विद्वत्ता

पं. टोड़रमल जी से एक विद्वान ने परिचय में इनके गुरु का नाम पूछा। पण्डित जी ने अपने गुरुजी का नाम बंसीधर बताया। तब उक्त विद्वान ने व्यंग में कहा-कि वही बंसी, जिससे मछली पकड़ते हैं। इसके उत्तर में पण्डित ने बंसीधर शब्द के व्याकरणादि से 57 अर्थ करके बतायें। जिसे सुनकर वह विद्वान बहुत लज्जित हुआ।

शिक्षा- कुछ भी बोलने के पहले देख लें कि आप किससे बोल रहे हैं।

"मुनि निंदा का फल"

ये कुर्वन्ति मुनेर्निन्दां, निन्द्याः स्युस्ते भवे भवे।
दुःखं च बहुधाऽशर्म-श्वभ्रे तेषां भविष्यति ।।

अर्थः- जो मुनि की निंदा करते हैं, वे भव-भव में निन्दनीय होते हैं तथा उन्हें विविध दुःखों से परिपूर्ण नरक में दुःख प्राप्त होता है

सन्मति नाम क्यों?

भ. पार्श्वनाथ के शासनकाल के दीक्षित संजय और विजय नाम के दो मुनियों की कुछ तत्त्वों में जिज्ञासा थी। वे उसका समाधान नहीं कर पा रहे थे तथा उनका समाधान करने के लिए किसी विद्वान की खोज में थे किन्तु अभी तक उन्हें कोई विद्वान ऐसा नहीं मिल सका था जो उनकी जिज्ञासा का समाधान कर सके।

एक बार वे वैशाली होकर जा रहे थे। वहीं राजकुमार महावीर का उनसे साक्षात्कार हो गया जिससे उनकी जिज्ञासा का अपने आप समाधान हो गया। तब उन्होंने महावीर राजकुमार का 'सन्मति' नाम रख दिया। इसी कारण भगवान् महावीर को 'सन्मति' भी कहते हैं।

शिक्षा– पुण्यात्मा के संसर्ग से ही बहुत सा ज्ञान स्वतः हो जाता है।

"हिंसा का त्याग करें"

जीव–वहो अप्प–वहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।
सव्व जीवहिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहिं।।

अर्थः– जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अतः आत्महितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीवहिंसा का परित्याग किया है।

भगवान् महावीर की निर्भयता

एक बार एक मदोन्मत्त पागल हाथी छूट कर नागरिकों को कष्ट पहुँचाने लगा। सम्पूर्ण नगर में हाहाकार मच गया। हाथी किसी को कुचलता किसी को मारता हुआ ऊधम मचा रहा था। राजकुमार महावीर को जब इस घटना का पता चला तो वे निर्भय हो उस हाथी के सन्मुख जाने लगे। लोगों ने बहुत समझाया और वहाँ जाने से मना किया किन्तु कुमार निर्भय हो उसके सन्मुख जा पहुँचे। हाथी तो क्रुद्ध था ही, उसने कुमार पर प्रहार करना चाहा। किन्तु उनकी आत्मशक्ति के आगे वह नत मस्तक होकर अपनी सूँड उठा कर नमस्कार कर शान्त हो गया। जन समूह ने कुमार की बहुत प्रशंसा की। कुमार की जय-जयकार से आकाश मण्डल गूँज उठा। तब एक उत्सव मनाकर महावीर कुमार को 'अतिवीर' का पद देकर बहुत-बहुत बधाई प्रदान की गई।

शिक्षा -किसी भी विपत्ति से डरो नहीं, उनमें डटे रहो।

बोलो बोली ना कि गोली

एक बार कौरवगण पांडवों का वैभव देखने के लिए उनके राजभवन में गये। आगे जाकर देखते हैं कि पानी सा भरा हुआ है। उसे देखकर दुर्योधन झिझका। पांडव यह देख कर हस पड़े। आगे जाकर सब दूर पानी के रंग का पत्थर पड़ा था। बीच में पानी भरा था। उस पानी को भी पत्थर समझ कर दुर्योधन चलने लगा तो पानी में पच्च से गिर गया।

द्रोपदी ने इसे देखकर कहा- **'वाह! अन्धों के अन्धे ही होते हैं।'** यह बात दुर्योधन को तीर की तरह चुभ गई। इसी के पफलस्वरूप महाभारत युद्ध हुआ और 18 अक्षौहिणी सेना समाप्त हो गयी।

शिक्षा- शब्दों को बोलने के पूर्व भली प्रकार विचार करें।

"कौन क्या है? "

जन्मान्धोऽवैयाकरणो, मूकस्तर्क-विवर्जितः।
साहित्य-विधुरः पंगुः, निर्धनः कोष-वर्जितः ।।

अर्थः- जिसने व्याकरण नहीं पढ़ा है, वह जन्मान्ध है। जो न्यायशास्त्र से रहित है, वह गूंगा है। जो साहित्य से रहित है, वह लंगड़ा है और जो कोष (शब्दकोष) से रहित है, वह निर्धन है।

आत्म-शांति का पथ

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने एक बार एक मनुष्य से पूछा- 'यदि तुम एक हाथ में घी का भरा लोटा और दूसरे हाथ में छाछ का भरा लोटा लिये जा रहे हो और कर्म योग से मार्ग में किसी का धक्का लग जाये तो तुम किस लोटे को संभालोगे?'

मनुष्य ने कहा- जरूरी बात है- 'घी का लोटा पहले संभालेंगे।'

तब श्रीमद् राजचन्द्र जी ने कहा- 'पर आजकल बात इससे बिलकुल विपरीत है। लोग पहले शरीर को संभालते हैं जो कि छाछ के समान है और आत्मा की तनिक भी परवाह नहीं करते जो कि घी के तुल्य है।'

मनुष्य को श्रीमद् राजचन्द्रजी के कहने का अभिप्राय ठीक-ठीक समझ में आ गया कि यदि कोई शान्ति प्राप्त करना चाहता है तो वह शरीर और आत्मा इन दोनों में से आत्मा की पहिचान कर उस ओर ही दृष्टि रखे।

शिक्षा- सदा ध्यान रखें- आत्मा शरीर में है, उसी की ओर दृष्टि रखें।

दूध-पानी जैसी मित्रता

दूध में पानी के मिलते ही दूध ने अपने समस्त गुण पानी को दे दिये, अपने जैसा श्वेत बना लिया। इसी कारण अग्नि में तपते समय दूध को जलते देख पानी भी अपना शरीर अग्नि में होमने लगा। दूध को यह सहन नहीं हुआ। वह अपने मित्र की इस संकट अवस्था देखकर उफान भरता हुआ अग्नि में पड़ना ही चाहता था कि पानी के छींटे पड़ते ही दूध ने समझा कि मित्र आया है, अतः वह शांत हो गया। सज्जन पुरुषों की मित्रता ऐसी ही हुआ करती है।

इसी आशय का निम्न छप्पय पठनीय है-

प्रथम क्षीर ने नीर-मित्र अपने सम कीनो।
अग्नि जल्यो जल आप दूध दुख होन न दीनों।।
पानी जलत निहार-उफनि पय ऊपर आयो।
पावक पढ़ने लग्यो अम्बु फिर आन बचायो।।
यों एक रूप सुख दुख विषै, नेह परस्पर चाहिये।
दृष्टान्त देखि बुधजन कहे, ऐसी प्रीति सराहिये।।

शिक्षा- मित्रता ऐसे लोगों से करो, जो परिस्थितियों को नहीं आपको देखते हो।

छोटा बड़ा डाकू

एक बार विश्व-विजेता बादशाह सिकंदर के सामने एक डाकू को पकड़ कर लाया गया। सिकन्दर ने फांसी की सजा सुनाते हुए डाकू से कहा- 'यदि तुझे कुछ कहना हो तो अपनी मृत्यु आने के पहले कुछ कह सकता है।'

डाकू बोला- 'महाराज! आप जो काम करते हैं वही तो मैं करता हूँ। अन्तर केवल इतना ही है कि मैं छोटा डाकू हूँ और आप संसार के सबसे बड़े डाकू हैं। मैंने तो दस पाँच ही घर उजाड़े हैं। अतः मुझे दण्ड देने के पहिले आप अपने दण्ड का निर्णय कर लीजिये।'

यह सुनकर बादशाह ने कहा- 'हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं और तुम्हें छोड़ देना चाहते हैं।'

डाकू ने कहा- 'अपराध का दण्ड तो मुझे मिलना ही चाहिये। पर यह भी बतलाने का कष्ट करें कि आपके अपराधों का संसार में दण्ड विधान क्या है?' सिकन्दर कुछ सोचता ही रह गया।

शिक्षा- अनुशासित बनें फिर अनुशासन की चाह करें।

चन्द्रगुप्त की गुरु-भक्ति

पाटलिपुत्र का राजा नन्द, चन्द्रगुप्त और उसके गुरु चाणक्य से बड़ा परेशान था, किन्तु वे बार-बार आकर आक्रमण कर देते थे। उसने अपने सेनापति को हुक्म दे दिया कि अब की बार यदि वे हमला करें तो उन्हें छोड़ना मत, जान से मार डालना।

थोड़े दिन बाद चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के साथ थोड़ी सी फौज लेकर फिर पाटलिपुत्र पर हमला कर दिया। नन्द के सेनापति ने उनकी मुट्ठी भर सेना को खत्म कर दिया। तब चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों जान बचा कर भागे। सेनापति की आज्ञा से कुछ सेनिकों ने उनका पीछा किया।

चाणक्य ने देखा- फौज बिल्कुल निकट आ गई है। अब भाग कर बचना कठिन है। उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई, सामने तालाब था। कमल लगे हुए थे। वह चन्द्रगुप्त से बोला- चन्द्र! अब भागने से कोई फायदा नहीं। तुम इस तालाब में छुप जाओ। फौज आ पहुँची है।

चन्द्रगुप्त बोला- गुरुदेव! यह कैसे हो सकता है? मैं बच जाऊँ और आपको मौत के मुँह में धकेल दूँ?

चाणक्य बोला- बहस का समय नहीं है। तुम जाकर छिप जाओ। मेरी चिन्ता मत करो।

और यह कह कर उन्होंने चन्द्रगुप्त को पानी मैं धक्का दे दिया। लाचार चन्द्रगुप्त को कमल के पत्तों के नीचे पानी में छिपना पड़ा।

इतने में दो घुड़सवार आ पहुँचे। आते ही उन्होंने चाणक्य से पूछा- अभी दो आदमी इधर से भागे हैं। तुमने देखा है क्या उन्हें?

तभी चन्द्रगुप्त ने पानी में से यह देखने को शिर निकाला कि गुरुदेव के साथ कोई बदतमीजी तो नहीं कर रहा है।

चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की तरफ इशारा किया और बोला- देखो, एक तो वह छिपा हुआ है।

सिपाही पानी में घुसने लगे तो चाणक्य उन्हें रोक कर बोला- अरे! तुम्हारे कपड़े भीग जायेंगे। इन्हें तो यहीं उतार दो।

सिपाही चाणक्य की बातों में आ गये। उन्होंने कपड़े हथियार सब किनारे पर रख दिये और पानी में घूसने लगे तभी चाणक्य ने तलवार के एक ही बार से दोनों को समाप्त कर दिया और चन्द्रगुप्त को आवाज देकर बोले- चन्द्र! चन्द्र! आओ,निकल आओ।

चन्द्रगुप्त निकल आया और सिपाहियों की वर्दी पहिनकर दोनों घोड़ों पर बैठकर चल दिये। रास्ते में चाणक्य बोला- चन्द्र! सत्य कहना। जब मैंने तुम्हारी ओर संकेत करके सिपाहियों को बताया था तो तुम्हारे मन में क्या बात आई थी?

चन्द्रगुप्त बोला- गुरुदेव! मैंने सोचा, इसमें भी गुरु ने कुछ मेरी भलाई ही सोची होगी।

गुरु चाणक्य ने फिर प्रश्न किया- अच्छा तुम्हारे मन में यह बात नहीं आई थी कि गुरु ने मुझे धोका दिया और मुझे मरवाना चाहते हैं।

चन्द्रगुप्त ने बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया- नहीं गुरुदेव! यह बात तो मेरे मन में तीन काल में भी नहीं आ सकती।

चन्द्रगुप्त अपनी इसी गुरुभक्ति के कारण भारत का सम्राट बना।

शिक्षा- यदि गुरु के प्रति आपकी सच्ची श्रद्धा और समर्पण है तो आप हमेशा सफल होंगे।

सती सीता की सीख

रावण ने राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में दंडक वन में सीता का हरण किया और उसे ले जाकर लंका उद्यान में रखा। सीता को मनाने के लिये रावण ने अनेक पुरुषार्थ किये कि सीता किसी प्रकार अनुकूल हो जाये, पर ऐसा होना असम्भव ही रहा। क्योंकि पूर्व में उदय होने वाला सूर्य पश्चिम से उदित नहीं होता। अन्त में रावण स्वयं सीता को राजी करने गया।

रावण ने कहा- सीते! मान जाओ, त्रिखण्डाधिपति लंकेश तुमसे प्रार्थना करता है। तीन खण्ड का वैभव तुम्हारे चरणों में बिछ जावेगा। तुम लंका की महारानी बनोगी। असंख्य दास-दासी, परिकर, पुरकर और सैकड़ों मंडलेश्वर राजा महाराजा, नरेश तुम्हें विनयावनत शिष्य की तरह नमन करेंगे। सीते! तुम्हारा जीवन धन्य हो जायेगा।

सीता ने कहा- दशानन! तुम त्रिखंडाधिपति हो, यह सत्य है और यह भी सत्य है कि तुम न्यायप्रिय शासक हो, तुम्हारे नाम को सुन कर शत्रु लोग थर्रा उठते हैं, कांप जाते हैं, प्राणों की सुरक्षा के लिये गुफाओं के गहन अन्धकार में घुस जाते हैं और यह भी सत्य है कि तुम इस युग में एक असाधारण शासक हो पर भूलते क्यों हो- **श्वेत शुभ्र चादर में लगा हुआ कालिमा का एक धब्बा भी उस चादर को बदनाम कर देता है, चादर कलंकित हो जाती है।**

जो चन्द्रमा संसार को शीतल प्रकाश देता है, जिसके उदय होने पर प्राणियों को आनन्द प्राप्त होता है; उसी चन्द्रमा में लगी हुई एक कृष्ण क्षीण रेखा चंद्रमा को बदनाम करती है, सम्पूर्ण संसार कृष्ण क्षीण रेखा की और अंगुली उठाता और कहता है कि चन्द्रमा कलंकी है।

लंकाधिपते! तुम्हारे तीन खंड का वैभव-ऐश्वर्य मेरे समक्ष धूल के समान है। तुम मेरी आशा छोड़ दो। बालू रेत से तेल की भले ही आशा की जा सकती है, पर सीता की आशा तुम नहीं कर सकते। क्या राक्षसेन्द्र तुम्हें नहीं मालूम है कि-

शूर-शस्त्र अरु कृपण-धन, अरु पतिव्रता-गात।
केहरि-केश भुजंग-मणि, मरे ही आवे हात।।

अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, राक्षसेन्द्र ! सोने में सुगंध नहीं होती, यह सच है, पर लंकेश! तुम राम की सीता को राम के पास भेज दो। तुम्हारा जीवन **"सोने में सुगंध"** की उक्ति को चरितार्थ करेगा। मेरे शरीर का एक-एक अणु राम के चरणों में समर्पित है। क्या चन्द्रमा की ज्योत्सना कभी चन्द्रमा से भिन्न रह सकती है? रावण! अभी भी तुम्हारे लिये समय है। तुम नेक रास्ते पर आ जाओ।

शिक्षा- चारित्रहीन को सदा ही झुकना पड़ता है।

"दुर्जन कैसा है"

सर्प-दुर्जनयोर्मध्ये, वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दशति कालेन, दुर्जनस्तु पदे पदे ।।

अर्थः- साँप और दुर्जन के बीच साँप कुछ अच्छा है दुर्जन नहीं; क्योंकि साँप तो मृत्यु आने पर ड़सता है परन्तु दुर्जन तो पद-पद पर ड़सता है।

सच्ची शिक्षा

एक व्यक्ति जंगल की गुफा में बैठे हुए महात्मा जी के पास गया। विनयपूर्वक महात्माजी को नमस्कार कर बोला- महात्मन्! मेरे मन में स्थिरता नहीं रहती है, इसका कारण मैंने यह निश्चय किया है कि मेरी धर्म में दृढ़ता नहीं है। अतः आप कृपा करके यह बतावें कि मुझे धर्म में दृढ़ता किस प्रकार हो?

महात्मा ने कहा- 'तुमने अभी तक अन्धों से ही यह बात पूछी है, आँख वालों से नहीं। अन्धों का कन्धा पकड़कर भला आज तक कोई गन्तव्य स्थान पर पहुँचा है?' व्यक्ति ने कहा- 'हाँ महात्माजी ऐसा ही हुआ है। मैंने इस बात का अनुभव किया है और तभी आपके पास आया हूँ। महात्मा ने कहा- 'आपके उस अनुभव में एक बात की कमी रह गई है और वह यह कि आप आँख वाले की पहचान नहीं कर सकते हैं, नहीं तो मेरे पास क्यों आते?'

उस व्यक्ति के बहुत अनुनय विनय करने पर महात्माजी ने छह महीने बाद आने के लिए कहा। व्यक्ति चला गया पर उसे यह निश्चय हो गया था कि 'धर्म में दृढ़ता किस प्रकार हो' इसका उत्तर महात्माजी से अवश्य मिल जायगा। अतः छह महीने पूर्ण होते ही वह महात्माजी के सामने आ खड़ा हुआ। महात्मा जी ने सरल शब्दों में समझाया- **'दूसरों का पाप छिपाने और अपना पाप कहने से धर्म में दृढ़ता प्राप्त होती है।'**

व्यक्ति का हृदय गद्गद् हो गया। वह बोला- महात्मन्! आपने मेरा जीवन पलट दिया। मुझे अपने सदाचारीपन का बहुत घमण्ड था तथा दूसरे की बुराई सुन कर निंदा किया करता था। अब मैं आज से आपकी शिक्षा का पूर्ण पालन करूँगा।

शिक्षा- पाप से बचोगे तभी धर्म में दृढ़ता को प्राप्त हो पाओगे।

मत करो अभिमान

एक बार एक ब्राह्मण नदी पार करने के लिये नाव पर सवार हुआ। उसको अपनी संस्कृत विद्या का बहुत अभिमान था। अतः उसने चलती हुई नाव में मल्लाह से पूछा-

क्यों भाई? थोड़ी बहुत संस्कृत-विद्या भी जानते हो?

'जी नहीं'

क्या कोई कालिदास कवि का ग्रन्थ पढ़ा है?

'जी नहीं'

तब तो समझो तुम्हारा आधा जीवन बेकार हो गया।

वह कैसे? मल्लाह ने आश्चर्यचकित हो पूछा।

ब्राह्मण ने अभिमान के साथ कहा- तुम्हें मालूम नहीं, जो लोग संस्कृत नहीं पढ़ते उनका आधा जीवन बेकार हो जाता है।

अभी दोनों परस्पर बात कर रहे थे कि जोर का तूफान आया तथा नाव नदी में इधर-उधर डगमगाने लगी मल्लाह ने नाव को काबू में लाने की बहुत कोशिश की, पर असफल रहा।

मल्लाह ने घबराते हुए ब्राह्मण से पूछा- क्या आप तैरना जानते हैं? नहीं भाई, मैं तैरना नहीं जानता। तो क्या आप नाव चलाना जानते हैं? नहीं, यह विद्या भी मुझे मालूम नहीं।

पर बात क्या है? पंडित जी ने वेग से पूछा।

'तब तो पंडित जी आपका पूरा जीवन बेकार हो गया।'

वह कैसे? ब्राह्मण ने आश्चर्य से पूछा।

मल्लाह ने कहा- मैं संस्कृत-विद्या नहीं जानता, इसलिए मेरा आधा जीवन बेकार हुआ, परन्तु तैरना अवश्य जानता हूँ। आप तैरना नहीं जानते, अतः आपका तो यह पूरा हो जीवन बेकार हो गया है। तूफान से तभी नाव तुरन्त डूब गई। मल्लाह तैर कर किनारे आ गया। ब्राह्मण के बहुत कुछ छटपटा लेने पर मल्लाह ने उसे निकाल लिया। अब वह ब्राह्मण सर्व प्रकार की विद्या के महत्त्व को समझ रहा था और सोच रहा था कि जीवन में तैराक होना भी अनिवार्य है। स्वयं की विद्या के अभिमान में क्या रखा है?

शिक्षा– आपकी विद्या का अभिमान आपको डूबा देगा।

"शिक्षा प्राप्ति में बाधा"

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा ण लब्भदि।
थंभा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सएण य।।

अर्थः– 1.अभिमान, 2. क्रोध, 3. प्रमाद, 4.रोग और 5. आलस्य; इन पाँच स्थानों या कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती।

क्या है सच्ची सम्पत्ति?

एक महात्मा पुरुष जगह-जगह धर्म का प्रचार करते हुए आये। एक दिन उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जो व्यक्ति अपनी सच्ची संपत्ति बतलावेगा उसी के यहाँ भोजन-पान करेंगे।

कई पुरुष आये। सबने अपना-अपना धन बताया,पर यह सच्चा नहीं निकला। महात्मा जी तीन दिन निराहार रहे। अन्त में एक बुद्धिमान सेठ आया और उसने कहा- महाराज! मेरे पास सच्चा धन बीस हजार है। इसमें एक रत्ती भर का भी अन्तर नहीं पड़ सकता। अतः आज आप मेरा घर पवित्र करने का कष्ट करें। महात्मा जी ने स्वीकृति दे दी।

जब भोजन बनकर तैयार हो चुका तो उस सेठ ने अपनी छोटी लड़की को महात्मा जी को बुलाने भेज दिया। लड़की के गले में दो लाख रुपये का एक बहुत सुन्दर रत्नहार पड़ा हुआ देखकर महात्मा जी ने जब उसका मूल्य मालूम किया तब उसे लौटाते हुए कहा कि तुम्हारे पिता ने अपना सच्चा धन केवल बीस हजार रुपया बतलाया था परन्तु जब दो लाख रुपये का रत्नहार तुम्हारे ही पास है तब तुम्हारे घर में और काफी धन होगा। अतः झूठ बोलने वाले तुम्हारे पिता के घर भोजन नहीं करेंगे।

लड़की के वापिस लौट आने पर सेठ ने पुनः अपनी बड़ी लड़की और लड़के को महात्माजी के पास भेजा। परन्तु इन दोनों के गले में भी बहु-मूल्य हार देखकर महात्माजी ने उन्हें वापिस भेज दिया। अन्त में सेठ स्वयं आकर चरणों में नत-मस्तक हो विनम्रता से कहने लगा- महाराज! मुझसे कौन-सा अपराध बन गया है जिससे आप भोजन ग्रहण करने नहीं चल रहे हैं? महात्मा जी ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया- भाई! तुम अपना धन केवल बीस हजार बतला गये थे, पर जब

तुम्हारे बच्चों के गले में ही लाखों रुपयों के रत्नहार थे तब तुम्हारे घर में तो और भी अधिक धन होगा अतः तुम्हें मिथ्यावादी जानकर हम तुम्हारे यहाँ भोजनार्थ नहीं चल रहे हैं।

सेठ ने विनयपूर्वक कहा- महाराज! आपने मुझ से सच्चा धन पूछा था, इसलिये बीस हजार बतलाया। क्योंकि मैंने जन्म से लेकर आज तक धर्मकार्य में केवल बीस हजार ही रुपये खर्च किए हैं। इसलिए मेरा सच्चा धन उतना ही है। वैसे तो महाराज! मेरे घर में करोड़ों रुपये, हीरा, मोती, माणिक, पन्ना आदि रत्न भरे पड़े हैं। परन्तु ये मेरे सच्चे धन नहीं। क्योंकि इनमें से एक पाई भी मेरा साथ नहीं देगी। मेरे साथ जाने वाला केवल धर्मकार्य में लगा हुआ बीस हजार रुपया है वही मैंने आपको अपनी सच्ची सम्पत्ति बतलाई थी।

इस पर महात्माजी ने कहा- सेठजी! हम तुम्हारी बुद्धिमत्ता से बहुत प्रसन्न हैं। जो प्रत्युत्तर हम चाहते थे वह हमें मिल गया।

शिक्षा- वास्तव में सद्दान में लगी हुई सम्पत्ति ही सच्ची सम्पत्ति है।

डोर मत छोड़

एक बार एक लड़के ने हवा में पतंग उड़ाई। उसे बड़ी खुशी हो रही थी। फौरन ही हवा ने पतंग से कहा- 'आओ! मैं तुम्हें सारी दुनिया दिखाऊँगी।' पतंग ने हसते हुए कहा- 'मैं अवश्य ही तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ परन्तु मुझे डोरी नहीं आने देती।' हवा ने कहा- 'घबराओ मत, मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। इतना कह कर हवा बड़े वेग से चली तथा थोड़ी ही देर में डोरी को तोड़ दिया।'

अब जैसे ही हवा पतंग को उड़ा कर ले गई, वह पतंग से कहने लगी- 'अब हम दोनों ही जायेंगे और संसार को देखेंगे।' पतंग ने बहुत उच्च स्वर में चिल्ला कर कहा- बहिन इतनी तेजी से नहीं। परन्तु होता क्या, हवा ने मुस्करा दिया तथा बड़ी तेजी से बहने लगी। दोनों ही महल, मकानों, वृक्षों तथा पहाड़ियों को पार करती हुई आकाश में घूमती रहीं। थोड़ी ही देर में वर्षा का काला बादल आया । सूर्य का दिखना बन्द हो गया। पहले तो धीरे-धीरे फिर बाद में जोर की बूंदों का आगमन हुआ। इस समय पूर्ण रीति से पतंग की अवस्था संकट में थी। आंधी और पानी की बूंदों की मार उसके ऊपर पड़ रही थी। वह चिल्लाई- हे हवा! मेरी सहायता कर मैं भीग जाने से अब उड़ने में असमर्थ होती जा रही हूँ। अब तो मेरे प्राण जाने ही वाले हैं। परन्तु हवा ने मात्र हसने के और कुछ नहीं किया। पानी की बूंदों ने पतंग की दुर्दशा करके जमीन पर ला पटका।

अब वह इस समय एक कीचड़ के भयंकर गड्डे में पड़ी हुई थी। उसने विचार किया- 'ओह! मैंने महान् भूल की है। यदि में डोर का साथ नहीं छोड़ती तो पूर्ण रूप से सुरक्षित रहती। पर अब क्या करूँ?'

सचमुच में यही दुर्दशा आज के मानव की हो रही है। वह धर्म (सच्चरित्र-सदाचार) रूपी डोर से अलग होकर नाना प्रकार के कष्टों को भोगता हुआ अधर्म (दुश्चरित्र) रूपी कीचड़ के गड्ढ़े में पड़ा-पड़ा बिलबिला रहा है, एक क्षण के लिये भी उसे चैन नहीं। यदि समझ है तो अब भो चेतो।

शिक्षा- धर्म की डोर कभी मत छोड़ना अन्यथा पाप की हवा तुम्हें नष्ट कर देगी।

"शत्रु कौन?"

कः शत्रुर्विषयो लोके, धर्मं दानं तपो हितम्।
दीक्षादि-ग्रहणं पुंसां, निषेध यति चैव सः।।

अर्थः- लोक में शत्रु कौन है? विषयशत्रु है तथा जो धर्म, दान, हितकारी तप तथा दीक्षा आदि के ग्रहण करने का निषेध करता है; वह शत्रु है।

अहिंसक की आवाज

एक बार जयपुर नरेश ने दीवान अमरचन्द्रजी से कहा दीवान साहब! आज आपको हथियारों से लैस होकर हमारे साथ शिकार खेलने चलना है। दीवान साहब ने कहा महाराज! मैं चलने को तैयार हूँ।

जयपुर नरेश कुछ पदाधिकारियों के साथ जंगल की ओर चल दिये। वहाँ जाकर देखा कि हिरणों का समूह खड़ा है। उन्हें देख नरेश ने अपनी बंदूक से निशाने की तैयारी की। हिरण यह देख कर प्राण बचाने के लिए चौकड़ी भरने लगे। उसी समय दीवान अमरचन्द्रजी ने जोर की आवाज लगाई- हिरणो! कहाँ जा रहे हो, खड़े रहो। जब तुम्हारे रक्षक ही भक्षक बन रहे हैं तब तुम भाग कर किसकी शरण में जाकर अपनी रक्षा करोगे। अपनी प्यारी प्रजा का पालक पिता तो तुम्हारे सामने खड़ा है, अपने पिता के हाथ से मरना क्या तुम्हें बुरा लगता है। सब खड़े हो जाओ।

यह आवाज सुन कर सभी हिरण एकदम खड़े हो गये। तब दीवान साहब ने कहा- महाराज! अब आपको दस बीस जितने हिरण मारना हो मारिये, किन्तु महाराज के हाथ से बन्दूक छूट पड़ी। तब राजा साहब ने कहा-दीवान साहब! आपने यह क्या जादू कर दिया कि ये सारे हिरण मूर्ति की तरह खड़े हो गये। दीवानजी! अब आज से ये हाथ किसी को सताने के लिये नहीं, किन्तु रक्षा के लिए ही उठेंगे और यह कह कर महाराज चुपचाप राजभवन वापिस लौट आये।

शिक्षा- अगर समझाने का तरीका अच्छा हो तो सब समझते हैं।

दृढ़-अहिंसक

सहारनपुर के लाला जम्बूप्रसाद जी रईस बड़े दयालू और धर्मप्रेमी थे।

एक बार एक अंग्रेज कलेक्टर ने शिकार खेलने के लिए इनसे हाथी मांगा। अंग्रेजी राज्य में अंग्रेजी आफीसरों की धाक किसी राजा से कम नहीं होती थी, किन्तु लाला जम्बूप्रसाद जी रईस ने स्पष्ट कह दिया- 'सरकार मैं एक अहिंसक जैन हूँ। मैं शिकार खेलने के लिये अपना हाथी कभी भी किसी को नहीं दे सकता।'

पहले तो कलेक्टर ने नाना धमकियाँ दीं और अन्त में यहाँ तक कह दिया कि समझते हो, इसका परिणाम तुम्हारी जमींदारी के लिये क्या हो सकता है?

लाला जी ने कहा- समझता हूँ यही कि कोई अपराध प्रमाणित हो जाने पर जमींदारी हाथ से चली जाएगी, इससे अधिक और क्या हो सकता है? इस उत्तर को सुनकर वह अंग्रेज बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उनकी पीठ थपथपाते हुए बहुत धन्यवाद दिया। धन्य हैं ऐसे दृढ़ अहिंसकों को जिन्होंने अपने प्राणों के समान ही दूसरे के प्राणों को भी समझा एवं कसौटी पर कसे जाने पर अपने सर्वनाश की चिन्ता से भी बहुत दूर रहे।

शिक्षा- आप अपने नियमों पर दृढ़ रहें, दुनिया एक दिन जरूर झुकेगी।

झूठ का भयंकर उत्पात

एक ग्राम में एक सेठ सेठानी रहते थे दोनों में अच्छी प्रीति थी तथा सर्व प्रकार का साधन था। उनके पास एक मनुष्य नौकरी की तलाश में पहुँचा।

सेठ ने पूछा- क्यों भाई! क्या-क्या कर सकते हो? उसने कहा- जो भी आप बतायेंगे, सब कर सकता हूँ। क्या लोगे? कुछ नहीं, वर्ष में एक दिन आप से और आपकी सेठानी से असत्य भाषण करूँगा। सेठ ने सोचा ऐसा मुफ्त का नौकर कब मिलने का, लगा लेना अच्छा है। यह सोचकर उसे रख लिया।

वर्ष भर काम कर चुकने पर वह जाने लगा तब बोला- सेठजी! अब मैं जाता हूँ, कल झूठ बोलूँगा। सेठ ने कुछ ध्यान नहीं दिया।

दूसरे दिन सायंकाल जाकर सेठ जी से बोला- मुझे आपका घर बहुत अच्छा लगा, पर क्या बताऊँ? यदि आपकी सेठानी चरित्रहीन न होती तो दुनिया में आपका घर एक ही होता। आज वह अपने प्यारे के कहने से आपका काम तमाम करेगी, अतः आप पूर्ण सतर्क रहें?

नौकर ने यह बात इस ढंग से कही कि सेठ के मस्तिष्क में शत प्रतिशत सच जम गई। अब वह सेठानी के पास गया और बोला- तुम्हारी जैसी देवी मैंने आज तक दुनिया में नहीं देखी,पर खेद है कि सेठ जी वेश्याओं के पास जाते रहे इससे आप बांझ कहलाने लगीं। नहीं तो क्या आज तक आपके कोई सन्तान न होती? सेठानी को भी यह बात ठीक जंच गई। उपाय पूछने पर कहने लगा- आज रात्रि को जब सेठ जी गहरी निद्रा में हो तब उनके एक तरफ के दाढ़ी-मूँछ के बाल उस्तरे से बना डालना, जिससे उनका मुँह खराब दिखने लगेगा और तब वेश्यायें सेठ जी को पास नहीं आने देंगी।

सेठानी को यह उपाय बहुत अच्छा लगा तथा उसने ऐसा करने का निश्चय कर लिया। आज तो सेठ जी शयन-कक्ष में आते ही पलंग पर पड़े-पड़े खुर्राटे लेने लगे। अभी रात्रि के प्रथम पहर की तीसरी घड़ी थी। सेठानी सुअवसर देख उस्तरे को सिल्ली पर घिसने लगी। जब उस्तरा खूब पैना हो गया तो सेठानी ज्योंही सेठ जी की दाढ़ी मूँछ के बाल बनाने लगी कि सेठ जी ने तुरन्त उठकर सेठानी की कलाई जोर से पकड़ ली। दोनों जोर से चिल्ला उठे तथा परस्पर धिक्कारने लगे। सेठ जी ने उस्तरे वाले हाथ की कलाई को अभी तक मजबूत पकड़ रखा था तथा सेठानी सेठ से अपनी कलाई छुड़ाने की कोशिश में थी। सेठ जी कहने लगे-दुष्ट! यदि आज मुझे वह नौकर सावधान न करता तो तू मुझे मार डालती। वह भी बोली-बिलकुल ठीक है, तुम आज तक वेश्याओं के यहाँ जा जाकर मुझे दुःखी करते रहे, यदि वहाँ न जाते रहते तो क्यों मैं आज तक बाँझ (सन्तान हीन) रहती? ठीक ही कहा था उसने।

दोनों में परस्पर कलह बढ़ता देख नौकर आ पहुँचा और बोला-सेठ जी क्षमा करो अब मैं जा रहा हूँ, जो मैंने कहा था कि एक बार वर्ष भर में आप दोनों से झूठ बोलूँगा सो बोल लिया।

सम्पूर्ण रहस्य सेठ-सेठानी को विदित हो गया और वे विचारते रहे कि देखो सेवक की एक झूठ ने कितना उत्पात मचा दिया।

शिक्षा-एक झूठ आपके जीवन को नष्ट कर सकता है, अतः सावधान रहें।

सच्ची साधना से बनो साधु

एक साधु बहुत ही शान्त और निस्पृही थे। वे स्वयं तो कभी विकथा करते ही न थे, साथ ही उन्हें अन्य विकथा करने वाले साधुओं के पास बैठना भी अच्छा नहीं लगता था। एक बार वे नगरी में आहार करके पहाड़ की चोटी के एकान्त स्थान में जाकर बैठ गये।

कर्म योग से कुछ समय बाद एक साधुओं का समुदाय वहाँ उनके पास आ बैठा और वे सब भोजन सम्बन्धी विकथा करने लगे। वे उस चर्चा में इतना मग्न हो रहे थे कि उन्हें स्वपद का कुछ विचार ही न रहा।

शान्त- निस्पृही साधु से रहा न गया। वे तुरन्त उन साधुओं के बीच जाकर बोले- यदि आप लोग सचमुच में आत्मकल्याण के लिये साधु बने हो तो, इस अयोग्य चर्चा के प्रायश्चित्त से अपने आपको पवित्र, सच्चा कर डालना चाहिए।

साधुओं को अपने अकर्त्तव्य का ज्ञान हुआ और उन्होंने एक-एक करके प्रायश्चित्त ग्रहण किया।

अब वे सच्ची साधना से साधु कहला रहे थे।

शिक्षा- साधना से साधु और विराधना से असाधु बना जाता है।

मुनिराज भूदेव-भवदेव

धर्म शास्त्रों के अनुसार घटना ग्यारह सौ वर्ष पुरानी है। जब भूदेव बारह वर्ष के थे और भवदेव सात साल के थे तभी माता-पिता का विछोह हो गया।

घर का सारा भार जहाँ भूदेव पर पड़ा वहाँ अपने अनुज के लालन पालन का बोझ भी सिर पर आया है। भूदेव ने माँ और बाप बन कर अपने छोटे भाई का पालन किया। लेकिन संसार की विचित्रता देख आचार्य श्री गुणभद्र मुनिराज के संघ में पहुँच मुनि दीक्षा लेली। संघ में आचार्य की आज्ञा प्रमाणचर्या करते हुए ज्ञान, ध्यान व तप में लीन हो गये। कुछ ही समय में गुणभद्र स्वामी के संघ में भूदेव स्वामी प्रधान मुनियों में गिने जाने लगे।

मुनिराज भूदेव शान्त स्वभावी, निर्विकारी और परम-हितेषी मुनि थे। वे प्रशंसा आदि से सदैव दूर रह कर आत्महित में लगे रहते थे। संघ देश-देशान्तर में बिहार करता हुआ बारह वर्ष बाद पुनः अयोध्या में आया। भूदेव स्वामी ने आचार्य से नगर में जाने की इच्छा व्यक्त की तथा आज्ञा लेकर नगर की ओर विहार किया।

मुनिराज उस मकान के सामने जा पहुँचे जहाँ बारात दुल्हन को लेकर रात्रि में ही वापिस आई थी। अनुज भवदेव की शादी कल ही तो पूर्ण हुई थी। बड़ी-बड़ी उमंगों को लेकर दुल्हन बाप के घर से चलकर अयोध्या आई थी। इधर भवदेव ने अपना संसार कैसे बढ़ाऊँ, इसके बड़े-बड़े विचार बनाये थे। परिवार वाले सभी उपस्थित थे। दावत की तैयारियां हो रही थीं। शहनाई द्वार पर बज रही थी। सर्वत्र वधू की सुन्दरता और उसके कुटुम्ब की चर्चा थी। भवदेव चारों और घूम-

घूमकर मेहमानों को भोजन करा रहा था, बुला रहा था, बधाइयां ले रहा था, कि एकाएक सामने मुनिराज भूदेव स्वामी आते हुए दिखे। भवदेव दौड़ कर चरणों में जा पहुँचा और लगा नमोस्तु नमोस्तु कहने।

चरण रज मस्तक पर चढ़ाकर ज्यों ही माथा ऊपर उठाया तो देखा यह तो पूज्य बड़े भैया हैं। प्रेमाश्रु बह निकले। बोल उठा भैया! आज अच्छे अवसर पर पधारे। आज मेरी शादी होकर आई है। मुझे शुभाशीर्वाद दो। भूदेव मुनिराज ने बिना भेदभाव के धर्म-वृद्धि का शुभाशीर्वाद दिया और कहा आत्मसिद्धि प्राप्त करो।

मुनिराज लौट रहे थे कि भवदेव ने सोचा-एक तो बड़े भाई, दूसरे पूज्य मुनिराज, लोग क्या कहेंगे कि दो कदम चल कर भैया को भेजने भी नहीं गया। शिष्टाचार का विचार करके भवदेव चल दिया भूदेव के साथ।

वापिस कैसे लौटै, जब तक मुनिराज न कहें। अतः तालाब की ओर संकेत करके कहा महाराज! यह वह तालाब है जहाँ आप मुझे कुश्ती सिखाते थे। पुनः फिर कुछ चल कर-महाराज! यह वह मैदान आ गया है जहाँ आप मुझे दौड़ाते थे। इसी प्रकार वह कहता गया कि महाराज! यह वह गौशाला है जहाँ आप मुझे दुग्ध लाने को कहते थे। यह सरयू आ गई है जहाँ मैं घन्टों तैरता था।

मतलब यह कि बार-बार वह वापिस लौटने के लिए बचपन की याद दिलाता हुआ बात कहे और मुनिराज हस कर ठीक है, पर वापिस लौटने के विषय में मुनिराज कुछ न कहते।

आखिर भवदेव ने सोचा- चलो, संघ स्थान तक ही भैया को पहुँचा आऊँ तथा चलते-चलते मुनिसंघ में जा पहुँचा। देखा 235

मुनिराज चतुर्विधि संघ सहित विराज रहे हैं। अपने को भूदेव ने धन्य माना। सभी को नमस्कार कर आगे बढ़ा ही था कि कानों में यह शब्द पड़े कि भूदेव मुनिराज अपने अनुज को भी मुनि बनाने लाये हैं।

क्या सोच रहे हो भवदेव! यह जनता जो कह रही है कि भूदेव मुनिराज के छोटे भाई मुनि बनने आये हैं क्या यह सत्य है? आचार्य गुणभद्र स्वामी ने जब यह कहा तो भवदेव ने यह कह दिया- हाँ सत्य है। मुनिराज! मुझे दीक्षा दीजिये। मैं अभी मुनि बनना चाहता हूँ।

एक झटके में तोड़ दिया कंगना फैंक दिये वस्त्र और पंच मुष्ठि केशलुंचन करके आचार्य से मुनि दीक्षा लेकर बैठ गया। मुनि संघ में चारों ओर भूदेव स्वामी की चर्चा फैल गई। भवेदव मुनि हो गये भूदेव के संसर्ग से।

समाचार नववधू को मिले। बाजे बन्द हो गये, शहनाई बन्द हो गई मेहमान हक्के-बक्के से खड़े रहे कि नव दुल्हन ने भी हाथ का कंगना तोड़कर फेंक दिया और अपना सुयोग्य समय समझकर स्त्रीलिंग छेदने की मन में भावना जागृत हो गई। धारण कर लिया आर्यिका (साध्वी) का भेष। सभी सम्पत्ति धार्मिक कार्यों में लगा दी, मकान को चैत्यालय बना दिया और आर्यिका माता उसी में धर्म ध्यान करने लगी।

बारह वर्ष बाद जब संघ भ्रमण करता हुआ पुनः अयोध्या आया तब भवदेव मुनिराज अपने प्राचीन मकान में गये, जहाँ श्री चन्द्रप्रभ भगवान् का चैत्यालय बना था। पूर्व घटनायें स्मरण हो आईं, कुछ मोह हुआ, पर आर्यिका माता ने बातचीत में अपने प्रति मोह की दशा देखी तो सम्बोधन किया- यह नर तन मिलना अति कठिन है। फिर उच्च वंश व

गोत्र का मिलना और फिर मुनि की पर्याय। मुनिराज भूदेव स्वामी को रंचमात्र भी मोह नहीं था, तब आप भी मोही न बनें।

भवदेव मुनिराज को आत्मबोध हुआ और आचार्य गुणभद्र स्वामी से मोह दशा के उत्पन्न होने के कारण प्रायश्चित्त लिया। तथा अन्त समय तक आत्म-साधना में लीन रहे, कर्तव्य पथ पर अडिग हो गये।

भूदेव मुनि घोर उपसर्ग सहकर स्वर्ग पधारे। भवदेव स्वामी ने घोर साधना करके आत्म-कल्याण किया और आगे मोक्ष जावेंगे। ऐसे मुनिराज भूदेव-भवदेव को मेरा शत्-शत् वंदन।

शिक्षा- वैराग्य के निमित्त पग-पग पर है, हम उन्हें देख ही नहीं रहे हैं।

"वक्ता"

शतेषु जायते शूरः, सहस्रे चैव पण्डितः।
वक्ता शत-सहस्रेषु, लोके भवति मानवः ।।

अर्थः-लोक में सौ पुरुषों के बीच एक शूरवीर होता है, हजार पुरुषों के बीच एक पण्ड़ित होता है और सौ हजार पुरुषों के बीच एक वक्ता होता है।

साले-बहनोई का धर्म प्रेम

सेठ शालीभद्र और धन्ना सेठ में परस्पर साले बहनोई का सम्बन्ध था।

एक बार शालीभद्र को संसार से वैराग्य हो गया। वे वन गमन को तैयार थे किन्तु उनकी 32 पत्नियों ने बत्तीस दिन का वचन लेकर उन्हें रोक लिया।

धन्ना सेठ की पत्नी कनकश्री अपने भाई के वैराग्य का समाचार सुनकर उदास हो गई। धन्ना सेठ ने पत्नी से उदासी का कारण जानकर कहा- जब शालीभद्र को संसार से वैराग्य हो गया है तो उसे घर पर रुकने की क्या जरूरत थी। भाई के प्रति इन शब्दों को सुनकर कनकश्री तपाक से बोल उठी- जब आपको वैराग्य हो जायेगा तब तो शायद एक दिन भी नहीं ठहरेंगे।

धन्ना सेठ ने कहा- एक दिन तो बहुत होता है, एक घन्टा भी रुकना बेकार है क्योंकि आयु का क्या ठिकाना। और तू कह दे तो इसी समय जा सकता हूँ।

पत्नी ने हँसी-हँसी में 'हाँ' कह दिया। अब क्या था धन्ना सेठ घर से चल दिये। आश्चर्यचकित हो सब दुःखी हुए।

शालीभद्र के घर जाकर धन्ना सेठ ने कहा- शालीभद्र ! क्या तुम्हें अपनी आयु का पक्का विश्वास है जो बत्तीस दिन को रुक गये। शालीभद्र के ज्ञान नेत्र खुले। अब वह धन्ना सेठ के साथ गुरु चरणों में जाकर दीक्षित हो गये। साले बहनोई का यह धर्म प्रेम धन्य है।

शिक्षा -सच्चा मित्र वही जो सही राह दिखाए।

व्यर्थ की लड़ाई

दो किसान आपस में मित्रता का व्यवहार रखते थे। एक रोज एक ने कहा- मित्र! अबकी बार हम तो ईख बोयेंगे।

दूसरा बोला- 'ईख तू बोना, हम तो भैंस लायेंगे।' प्रथम बोला- 'भैंस तो तू अवश्य ले आना, परन्तु उसे बाँधकर रखना, ऐसा न हो कि मेरी ईख खा जाये।'

दूसरा तमक कर बोला- भाई! जानवर है आदमी तो है नहीं जो कहना मान लें, उसके मन में आयेगी तो ईख खायेगी ही। यह सुना तो पहला झल्ला कर बोला- 'तो बस, अब तू भैंस ला चुका।'

दूसरे ने भी मुँह मटका कर उत्तर दिया- 'तो बस, तू भी ईख बो चुका।'

पहले ने चट से अँगुली द्वारा जमीन पर लकीरें काढ़ दीं और बोला-'ले, मैं तो ईख बो चुका, अब तू अपनी भैंस छोड़।'

दूसरे ने वहीं से एक कंकरी ले उन लकीरों में डाल दी और कहा- 'ले मैं तो अपनी भैंसे छोड़ चुका, करले क्या करना है?'

दोनों एक-दूसरे पर टूट पड़े और बुरी तरह से घायल हो गये। व्यर्थ बातों की लड़ाई से और होता भी क्या?

शिक्षा- परस्पर में उतनी ही वार्ता करें जिससे विवाद न हो।

दुःख का अन्त कैसे हो?

किसी नगर में लुब्धक (यथा नाम तथा गुण) नामक एक बहुत बड़ा कंजूस रहता था। वह कभी न तो स्वयं पेट भर भोजन करता और न किसी को कराता। दान-धर्म में उसने कभी एक पैसा भी खर्च नहीं किया। यदि कभी कोई सार्वजनिक धर्म-कार्य उपस्थित हो जाता तो उसका नाम सुनते ही घबड़ा जाता था। वह प्रतिदिन स्वर्ण के जानवरों का जोड़ा तैयार कराने में लगा रहता था। इस प्रकार इसने सभी जानवरों के जोड़े तैयार करा लिये, पर घोड़े का जोड़ा शेष रह गया। एक घोड़ा तो उसने सोने का बनवा लिया। लेकिन दूसरा घोड़ा न बन सकने के कारण दुःखी रहता।

अब वह दूसरा घोड़ा बनाने के लिये वर्षा ऋतु में नदी की बाढ़ आने के कारण बहाव के साथ आई हुई लड़कियों को लाने लगा और उन्हें बेचकर धन इकट्ठा करता।

एक दिन जब वह बहुत ही फटे पुराने वस्त्रों को पहिनकर अपने मस्तक पर लकड़ी की गट्ठर लिये हुए नदी से आ रहा था तब राजभवन की अट्टालिका पर टहलती हुई महारानी ने देखा तथा देखते ही चकित होकर अपने मन में विचार करने लगी कि अरे! यह कोई बहुत गरीब आदमी है जो वर्षा में भीगते हुए नदी के प्रवाह से लकड़ी निकाल कर बाजार में बेचकर अपना पेट पालता है। इसका कुर्ता और धोती दोनों बहुत जीर्ण शीर्ण हैं तथा ओढ़ने का कम्बल भी बहुत फटा पुराना है। लकड़ी का बोझा सिर पर लादे हुए यह बड़ा कष्ट पा रहा है। हमारे राज्य में दरिद्रता के कारण यह दुःख पा रहा है, इसलिए इस गरीब का दुःख दूर करना राजा का परम कर्तव्य है।

यह सोचकर रानी ने राजमहल में राजा के पधारने पर उनसे निवेदन किया। हे स्वामिन्! हमारे राज्य में ऐसे भी गरीब आदमी हैं, जिनका दुःख देख कर पत्थर का हृदय भी पानी हो जाता है। आज मैं छत के ऊपर से टहलते हुए एक ऐसे गरीब आदमी को देखा जो कि अपना पेट भरने के लिए बाढ़ में आई हुई नदी में से लकड़ी का बोझ मस्तक पर लादे हुए फटे पुराने वस्त्रों को पहिनकर काँपता हुआ उसे बाजार में बेचने जा रहा था। उसे देखकर मुझे बड़ी दया आई। स्वामिन्! जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःखी रहती है उस राजा को नरक जाना पड़ता है। कहा भी है-

जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवशि नरक अधिकारी।।

इसलिये हे नाथ! उसे शीघ्र ही बुलाकर उसकी इच्छानुसार धन देकर उसका दुःख दूर कीजिये, जिससे आपके राज्य पद का गौरव बढ़े। राजा ने रानी की बात सुनते ही तुरन्त एक दूत को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही जाकर लुब्धक सेठ को बुला लाओ।

राजा की आज्ञा पाते ही दूत ने लुब्धक सेठ को बुलाकर राज दरबार में उपस्थित किया। राजा ने सेठ से कहा- भाई! तुम बहुत दुःखी हो, पर अभी तक हमें तुम्हारा दुःख मालूम नहीं था। अतः तुम्हारा कोई प्रबन्ध न हो सका। अब तुम्हारा जो कष्ट हो, सो कहो। उसके दूर होने की हम राज दरबार से व्यवस्था करा देंगे।

राजा के वचन को सुनकर लुब्धक सेठ ने कहा राजन! मैंने सभी जानवरों के जोड़े तैयार करा लिये, परन्तु घोड़े का जोड़ा नहीं तैयार करा सका। अतः उसी का जोड़ा तैयार कराने के लिये मैं रोजाना बाढ़ में बहती हुई लकड़ियों को नदी से निकाल लाता हूँ तथा उन्हें बेचकर पैसा इकट्ठा कर रहा हूँ।

हे नाथ! मेरे घर में और किसी वस्तु की कमी नहीं है। केवल एक घोड़ा न होने से मैं परेशान हूँ, इसलिये यदि आप से हो सके तो उसका प्रबन्ध कर दुःख दूर कर दीजिये।

राजा ने तुरन्त ही आज्ञा दी कि हमारे घुड़साल में अनेक भाँति के अच्छे से अच्छे घोड़े बंधे हुए हैं, उनमें से जो तुम्हारी इच्छा हो वही जाकर लेलो। राजा की आज्ञा पाकर लुब्धक सेठ बड़े चाव से घुड़साल में गया, पर उसे अपने घोड़े जैसा घोड़ा नहीं मिला। अन्त में वह वहाँ से लौट कर राजा से कहने लगा- महाराज! उनमें से कोई भी घोड़ा मेरे घोड़े जैसा नहीं है।

राजा आश्चर्यान्वित होकर सोचने लगा कि जब इसके घोड़े के समान घोड़ा हमारे राज्य में नहीं मिला, तब इसका घोड़ा कोई बहुत विलक्षण होगा, अतः इसके घोड़े को चल कर देखना चाहिये।

अन्त में राजा ने सेठ से कहा अच्छा चल कर अपना घोड़ा हमें दिखाओ। राजा की आज्ञा पाते ही सेठ उन्हें साथ में लेकर अपनी कोठी पर उपस्थित हुआ। कोठी में राजा साहब का शुभागमन जान कर सेठानी ने उनका बड़ा स्वागत किया। सेठ की सात मंजिल की गगनचुम्बी कोठी को देखकर राजा साहब विस्मित होकर अपने मन में कहने लगे कि इतनी ऊँची और सुंदर सेठ की कोठी के सामने तो हमारा राजमहल किसी काम का नहीं है।

सेठ जब राजा साहब को जानवरों की जोड़ी दिखाने के लिए तहखाने में ले गया तब स्वर्ण के अनेक जानवरों की जोड़ियों को देखकर राजा साहब आश्चर्यपूर्वक अपने मन में सोचने लगे कि इसके घर में इतनी सम्पत्ति होते हुए भी यह दरिद्र का रूप धारण किये हुए है। इसने न कभी भर पेट खाया न दूसरे को खिलाया तथा इस अटूट धन

का कभी भोग नहीं किया। मालूम होता है कि इसका उपभोग कोई दूसरा ही करेगा। यह जानकर राजा चलने के लिए तैयार हो गया। सेठानी ने अपने मन में सोचा कि राजा साहब आज सर्वप्रथम हमारे मकान पर आये हैं अतः इनको खाली हाथ नहीं भेजना चाहिये। ऐसा सोच कर सेठ को बुला के कहा- 'राजा साहब को कुछ भेंट देकर भेजना चाहिये।' सेठ ने पूछा 'क्या देना चाहिये?' सेठानी ने कहा- 'कम से कम एक थाली भर रत्न भेंट करना चाहिये।

लुब्धक सेठ को सेठानी का वचन सुनकर बड़ा दुःख हुआ परन्तु उससे डरता था इसलिये उसकी बात नहीं टाल सका। अन्त में जब रत्नों से भर कर थाली भेंट करने लगा तब शोक और भय के मारे उसके हाथ कांपने लगे।'

राजा साहब ने जब सेठ के हाथों को देखा तो लोभ के कारण सेठ की उंगलियां इस प्रकार मालूम होने लगीं कि मानों ये काले नाग होकर डसना चाहती हैं। अतः घबड़ा कर राजा ने कहा- कि यह भेंट स्वीकार करके मैं तुम्हें ही देता हूँ।

यह कह कर राजा वहाँ से अपने राजमहल में चले गये। सेठ बड़ा आनन्दित होकर वह धन अपने मकान में रख लिया एवं परिग्रह अधिक इकट्ठा करने के विचार से अपने घर अटूट धन रहने पर भी विदेश में जाकर नाना प्रकार के कष्टों के साथ धन संचय करने लगा।

बहुत दिनों बाद जब उसने काफी धन, मोती तथा रत्नादिक इकट्ठा कर लिया तब माल को जहाज में लाद कर अपने घर को प्रस्थान किया। कर्मयोग से बीच समुद्र में जहाज आते ही इतने जोर का तूफान आया कि माल सहित जहाज समुद्र में डूब गया। लुब्धक सेठ भी मर कर नरक दुःख का भागी हुआ।

संसार के सभी दुःख परिग्रह की लालसा से होते हैं। लुब्धक सेठ के पास अटूट धन होते हुए भी लालसा के कारण जीवन भर दुःखी रहा और मर कर भी वर्णनातीत दुःखों का पात्र बना। अतः सुखी जीवन की इच्छा करनेवाले प्राणी को परिग्रह का परिमाण करके लोभ और कषायादिक विकारों को दूर करते रहना चाहिये।

शिक्षा – लाभ होना बुरा नहीं है, लोभ होना बुरा है।

''विनाश का कारण''

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय-णासणो।
माया मित्ताणि णासेइ, लोहो सव्व-विणासणो।।

अर्थ:- क्रोध प्रीति को नष्ट करता है, मान विनय को नष्ट करता है, माया मैत्री को नष्ट करती है और लोभ सब कुछ नष्ट करता है।

साधना से दोष दूर

एक राजा सम्पूर्ण राज वैभव को छोड़कर संन्यासी हो गये। जंगलों में रहते। भयंकर तप करते। न भूख प्यास की चिंता और न सर्दी गर्मी की। एक बार कर्मवश वे किसी गाँव के बाहर आये। वहाँ कुए से थोड़ी दूर बालू का ढेर था। वे उस पर जाकर बैठे गये।

थोड़ी देर बाद उस ओर से ग्राम की स्त्रियाँ पानी भरने के लिए आईं। वे साधुजी को देखकर आपस में बातचीत करने लगीं कि देखो संन्यासी हो गये तो क्या हुआ। अभी तक ऊँचे बैठने का अभिमान तो छूटा ही नहीं। पहले राजा होने से सिंहासन पर बैठते थे अब बालू रेत पर जाकर बैठे हैं।

यह बात साधुजी के कर्ण कुहरों तक पहुँच गई। वे थोड़ी देर बाद समतल भूमि पर जाकर बैठ गये।

कुछ देर बाद वे ही स्त्रियां पानी भर उसी रास्ते से आईं और अब की बार संन्यासी जी को समतल भूमि पर बैठे देख कहने लगीं-

देखा बहिन! साधुजी को कितना गुस्सा आया है जो ढेर से उतर कर समतल भूमि पर आ बैठे हैं। साधु बन गये तो क्या? अभी क्रोध तो मौजूद ही है।

साधु सरल स्वभावी थे। उनके न ऊँचे बैठने का लालच था और न नीचे बैठने को बुरा समझते थे। उन्होंने सोचा- दुनिया में अनेक प्रकार के प्राणी हैं। इनके चर्चा करने से अपना क्या बनता बिगड़ता है। अब वे साधु अपने अवगुणों को और भी सूक्ष्मता से निरीक्षण करके दूर करने की साधना में लग गये।

शिक्षा- साधना के काल में दुनिया की नहीं, अपनी आवाज सुनो।

गंगा में गहा ग्राहने

सुहावना समय था। आकाश में चारों ओर से काले-काले मेघ एकत्र हो रहे थे। सूर्य की किरणें बहुत प्रयत्न करने पर भी अपने प्रकाश से धरती को प्रकाशित नहीं कर पा रही थी। गगन तो काला था लेकिन पृथ्वी हरी-भरी दिखाई दे रही थी।

सती सुलोचना के मन में नदी के तट पर स्थित जैन मंदिर के दर्शन की इच्छा उत्पन्न हुई और हाथी को तैयार करने के लिये महावत को बुलाया गया। मेघों से भरे हुए आकाश को देखकर महावत ने हाथ जोड़कर कहा- 'वर्षा ऋतु है। हाथी का पैर किसी भी समय फिसल सकता है। धरती इतनी गीली है कि हाथी सुविधा के साथ चल सकेगा। आकाश में लटकते हुए बादल न मालूम कब बरस पड़ें? ऐसे समय में हाथी की सवारी कष्टदायक सिद्ध हो सकती है। फिर जैसी आज्ञा हो। सेवक का धर्म तो निवेदन करना है।'

साध्वी सुलोचना के विशेष आग्रह करने पर हाथी को सजाया गया और हौदे पर बैठकर भगवान् जिनेन्द्र देव का स्मरण करने लगी।

हाथी बढ़ा और चलते-चलते वह नदी के किनारे पर आकर खड़ा हो गया। महावत ने कई बार आगे बढ़ने का संकेत किया लेकिन गजराज डरती हुई आँखों से एक बार नदी की ओर देख रहा था और दूसरी बार आकाश की ओर।

निर्दय होकर महावत ने अंकुश को उठाया और हाथी के एक कान में हूदा मारा। हल्की चिंघाड़ के साथ हाथी नदी में उतरा और बीच में आकर विकल हो उठा। आकाश ने पानी गिराना शुरु किया और एक विकराल मगर ने हाथी का पैर धर दबोचा।

महावत की आँखों से घबराहट प्रकट होने लगी तथा सुलोचना ने आँखें मूंद कर भगवान् का नाम स्मरण करना प्रारम्भ कर दिया। उसके निरंतर हिलते हुए होठों से णमोकार मंत्र के अक्षर सुनाई पड़ रहे थे। सहसा महावत का चेहरा खिल उठा और उसने देखा कि नदी सूख रही है और मगर हाथी का पैर छोड़ कर भागा जा रहा है।

हाथी ने अपने डगों को बढ़ाया और सुलोचना से उस पार पहुँच कर श्री मन्दिर जी में पूर्ण भक्ति भाव से पूजा की।

शिक्षा– निस्स्वार्थ और सच्ची भक्ति से सब कष्टों का निवारण होता है।

‘‘मूर्ख वार्तालाप फल’’

मूर्खैरलब्ध-तत्त्वैश्च, सहालापश्चतु:फल:।
वाचो व्ययो मनस्ताप-मपवादश्च ताड़नम्।।

अर्थ:- तत्त्वों को न समझनेवाले मूर्खों के साथ वार्तालाप करने के चार फल हैं- 1. वचन का व्यय, 2. मन का संताप, 3. अपवाद और पिटाई (ताड़न)।

किरण देवी की दृढ़ता

अकबर बादशाह जहाँ चतुर राजनीतिज्ञ था वहाँ विषयवासना में अन्धा भी था। वह अपनी वासनापूर्ति के लिये अनेक षडयंत्र रचता रहता था। वह इसके लिये ही एक 'नौरोज' का मेला भरता था। उसमें मीना बाजार लगता था, जिसमें केवल स्त्रियां ही जा सकती थीं। लेकिन अकबर बादशाह स्वयं स्त्री का वेश बनाकर उसमें घूमता रहता था और जिस किसी भी सुन्दर महिला को देखता उसे ही अपने मायाजाल में फंसा लेता था।

एक दिन इस मेले में मीना बाजार देखने के लिये महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह की पुत्री तथा बीकानेर नरेश के भाई महाराज पृथ्वीसिंह की पत्नी किरणदेवी गई। इसे देख कर अकबर ने दासियों से कह कर धोखे से किरणदेवी को जनाने महल में पहुँचा दिया। वहाँ विषयांध अकबर ने उसे घेर लिया और किरणदेवी को अनेक प्रलोभन दिखाये।

किरणदेवी ने उसे बहुत कुछ समझाया, किन्तु उसके समझाने का अकबर पर कोई असर नहीं पड़ा। ज्यों ही उसने उस वीर रमणी का अंग स्पर्श करने के लिये हाथ हिलाया, त्यों ही उस वीरांगना ने कमर से तेज कटार निकाली और एक धक्के से धरती पर पटक कर छाती पर पैर रख कर बोली- 'नीच, नराधम! भारत का सम्राट होते हुए भी तू ने इतना बड़ा पाप करने की कुचेष्टा की। दुष्ट अधम! तू बादशाह नहीं, नीच विषयी है। यदि तू बचना चाहता है तो मन में सच्चा पश्चात्ताप करके अपनी माता की शपथ खाकर प्रतिज्ञा कर कि अब से 'नौरोज' का मेला नहीं होगा और किसी भी नारी के शील पर कुदृष्टि नहीं डालेगा। नहीं तो आज इस तेज धार से तेरा काम तमाम करती हूँ।

अकबर के शरीर का खून सूख गया। उसने पतिव्रता के सामने हाथ जोड़कर दीनतापूर्ण स्वर में कहा- 'माँ! मुझे क्षमा कर दो। तेरा पुत्र प्राणों की भीख मांगता है।' उसने यह दृढ़ प्रण किया कि 'अब 'नौरोज' का मेला कभी नहीं लगेगा।' तब दयामयी देवी ने उसे क्षमा कर दिया।

किरणदेवी सतीत्व की प्रखर किरण थीं। उसने मात्र अपने ही नहीं भारत की अनेक रमणियों के सतीत्व की रक्षा की।

शिक्षा- आप अगर दृढ़ रहें तो कोई आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

"विद्या का फल"

शीलं परहितासक्ति-रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्याया, परिपाकोज्ज्वलं फलम्॥

अर्थः- शील, परहित में आसाक्ति, अहंकार का अभाव, क्षमा, धैर्य तथा लोभ का परिहार होना; ये सभी विद्या के परिपाक के उज्ज्वल फल है।

स्वयं का पाप स्वयं को खा गया

एक बार की बात है। पन्ना (मध्यप्रदेश) जिले के एक गाँव में एक किसान अपनी भैंस बेचकर आ रहा था।

सात सौ रुपये उसके पास थे। वह शाम हो जाने से रास्ते के एक गाँव में किसी ठाकुर के यहाँ ठहर गया।

ठाकुर को बातचीत से रुपयों का पता लग गया। उसने एकांत में अपने नौकर को बुलाकर धीरे से कहा- 'सुबह अंधेरे में ही जब यह किसान जंगल में पहुँचे, तभी इसको गोली मार कर रुपये छीन लेना।'

नौकर चार बजे रात्रि को आकर पास के जंगल में छिप गया। बड़े प्रातः ही किसान उठकर जाने लगा तो उसने दूसरे रास्ते में जाने का विचार कर लिया। बहुत देर हो जाने पर भी ठाकुर को बन्दूक की आवाज नहीं सुनाई दी। तब उसने अपने लड़के को देखने भेजा। लड़के के उस ओर पहुँचते ही नौकर ने उसे रुपये वाला किसान समझ कर गोली मार दी। ठाकुर का इकलौता पुत्र मर गया। जब इस घटना का पता चला तो ठाकुर अपना सिर धुन कर रह गया।

शिक्षा- दूसरे का बुरा सोचने से खुद का बुरा होता है।

सच्चा सहोदरपना

रामविलासजी तथा हरमुखरायजी सगे भाई थे। घर सम्पन्न था। किसी कारण वश दोनों ने अलग-अलग हो जाना अच्छा समझा। बटवारा हो गया।

दोनों भाई अलग-अलग व्यापार करने लगे। आपस में बिना संदेह दोनों में लेनदेन चलता था। दोनों भाइयों के प्रेम में अब तक किसी प्रकार कमी नहीं हुई। दोनों के लड़के बड़े हो गये और व्यापार का काम करने लगे। पर भाग्य की बात, रामविलास का व्यापार उन्नत होता गया और हरमुखराय का गिरता गया।

लगभग सत्तर हजार से कुछ अधिक रुपये रामविलास की फर्म के हरमुखराय की फर्म के नाम पड़ते थे।

हरमुखराय की फर्म फैल हो गई। रामविलास को बहुत दुःख हुआ, परन्तु सारा व्यापार लड़के के हाथ में था अतः वे कुछ नहीं कर सके। जमीन जायदाद दोनों के पास अभी मौजूद थी। रामविलास बहुत वृद्ध हो गए थे। उनके मन में एक दिन यह विचार आया कि हमारी फर्म के बहुत बड़ी संख्या में रुपये भाई हरमुखराय के पावने हैं। हरमुखराय मरणासन्न हैं और मैं भी मरणासन्न हूँ। हरमुखराय के लड़के गरीबी हालत में हैं। रुपये यदि उनके पास पड़े रहे और मेरे लड़कों ने हरमुखराय के लड़कों को परेशान किया या जायदाद पर मन चलाया तो बहुत बुरी बात होगी।

यह सोच कर वे अपने मन में दृढ़ निश्चय करके एक दिन गद्दी पर पहुँचे। उनके अपने नाम लगभग इतने ही रुपये फर्म में जमा थे। जो मरने पर उनके लड़के की सम्पत्ति होते। उन्होंने जाकर मुनीम से बही

माँगी और भाई हरमुखराय के खाते के सारे रुपये ब्याज सहित जमा करके अपने खाते में लिख दिये और हरमुखराय का खाता चुकती कर दिया। हरमुखराय को इसकी सूचना भी नहीं दी। हरमुखराय को इस बात का पता भी नहीं था। वे बड़े ईमानदार थे। अपनी जमीन जायदाद बेचकर लोगों के रुपये चुका रहे थे। वे बड़े भाई के ऋण को भी एक बड़ी जमीन तथा मकान बेचकर चुकाने की व्यवस्था कर रहे थे। इसी बीच में उन्हें पता लगा कि बड़े भाई साहब ने मेरा खाता अपने रुपये देकर चुकती कर दिया है, तो उनके नेत्रों से स्नेह के आंसू बहने लगे। भाई के चरणों में आये और बोले- आपने ऐसा क्यों किया। मैं तो रुपये दे ही रहा था। बड़े भाई रामविलास के नेत्र भी झरने लगे। उन्होंने भाई को गले लगा लिया। दोनों रोने लगे। यह दृश्य देखकर रामविलास जी के लड़कों का हृदय भी द्रवित हो गया। फिर से दोनों फर्म एक कर लिये गये और आनन्द का स्रोत बह उठा।

यह था सच्चा सहोदरपना जिससे बिगड़े हुए घर में फिर से शान्ति का साम्राज्य छा गया।

शिक्षा–धन से अधिक सम्बन्धों को महत्त्व देना सीखिए।

मातृसेवा

आनन्द नाम का एक गरीब लड़का था। वह माता की हमेशा आज्ञा मानता था तथा सदा सेवा में तत्पर रहता था।

एक बार उसकी माता बीमार हुई। तब वह रात दिन उसकी सेवा में जुटा रहा। एक दिन रात्रि को माता ने पानी मांगा। वह शीघ्र ही पानी लेने गया। किन्तु जब तक वह पानी लेकर आया, माता को गहरी नींद आ गई। उसने जगाना उचित नहीं समझा। वह पानी का गिलास लिये रात्रि भर माता के सिराहने खड़ा रहा। माता के जागने की राह देखी, पर माता रात भर सोती रही। उसे बीमारी में पहली बार ऐसी नींद आई थीं।

सवेरा होने के बाद लड़के की माँ जागी तो देखा कि लड़का रात्रि भर से पानी का गिलास लिये खड़ा है। माँ मन ही मन बहुत खुश हुई और अपने बच्चे की छाती से लगा लिया। आगे जाकर यही बालक चीफ जस्टिस बना।

शिक्षा –जिन्होंने आपको जन्म दिया उनकी सेवा से कभी विमुख न होना।

न्याय की विजय

कथानक महाभारत का है जब कौरव और पाण्डवों में युद्ध की दिन रात तैयारियां चल रही थीं। दोनों ही पक्षों पर युद्ध का उन्माद छा गया था। कौरव सोच रहे थे- इस युद्ध में पांडवों को सदा के लिये समाप्त कर देंगे।

पांडव अपने अधिकार के लिए युद्ध-रत थे। किन्तु वे अब भी चाहते थे कि भाईयों का युद्ध किसी प्रकार टल जाये। जब सर्व प्रकार के प्रयत्नों के बाद भी दुर्योधन किसी प्रकार शान्ति और समझौते की बात करने को तैयार नहीं हुए तो अन्त में पांडवों को भी युद्ध की तैयारी करने को बाध्य होना पड़ा। आखिर वे करते भी क्या?

दोनों पक्षों ने राजाओं के पास सहायतार्थ राजदूर दौड़ाये और उन्हें सहायता वे लिए आश्वासन मिलने लगे,दनादन सेनायें आन लगीं। सहायता प्राप्त करने में दुर्योधन अधिक सफल रहा। उसका कारण यह था कि एक तो वह सत्ताधीश था, दूसरे वह निपुण कूटनीतिज्ञ था।

यद्यपि पांडव बलवान थे, धर्मात्मा (सदाचारी) थे, उनका पक्ष न्याय का था, लेकिन वे दुर्योधन के समान कूटनीतिज्ञ नहीं थे। अतः, दुर्योधन अपनी कुटिलता और कूटनीतिज्ञता के कारण अधिक राजाओं को अपने पक्ष में मिलाने में सफल रहा।

दोनों की दृष्टि नारायण श्रीकृष्ण की ओर भी गई। श्रीकृष्ण त्रिखण्डाधिपति नारायण थे, उनके पास विशाल सेना थी। यह निश्चित था कि वे जिसका पक्ष लेंगे, युद्ध में वही पक्ष विजयी होगा। दोनों ही के उनके साथ निकट सम्बन्ध थे। उनके महान् व्यक्तित्व को देखते हुए कौरव और पांडव दोनों ने ही विचार किया कि उनके पास राजदूत

भेजना उचित नहीं, स्वयं ही उनके पास जाना चाहिए। कौरवों ने यह काम दुर्योधन के सुपुर्द किया और पांडवों ने अर्जुन को वह कार्यभार सौंपा।

संयोग की बात कि दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही श्रीकृष्ण के भवन पर साथ-साथ पहुँचे पूछने पर मालूम हुआ कि नारायण अभी शयन कर रहे हैं। दोनों ने सोचा कि जैसे ही सोकर उठें, अपनी माँग उनके सामने रख लेनी चाहिये। नारायण के शयन कक्ष में पहिले दुर्योधन ने प्रवेश किया, पश्चात् अर्जुन ने। दुर्योधन अहंकारवश कृष्ण के सिराहने की ओर बैठे गया और अर्जुन स्वभाविक सरलता से पैरों की ओर। दोनों ही उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे।

श्रीकृष्ण की आँख खुली तो पैरों की और बैठे हुए अर्जुन पर दृष्टि गई। श्रीकृष्ण ने बड़े स्नेह से पूछा- 'क्यों मित्र कब आये, क्या बात है?' अर्जुन जैसे ही उत्तर देने लगे कि दुर्योधन बोल उठा- 'नारायण! पहले मैं आया हूँ, मेरी बात पहले सुनिये।' नारायण भी कम निपुण नहीं थे, मुस्कराकर बोले- 'लेकिन मैंने देखा तो पहले अर्जुन को है। दुर्योधन हार मानने वाला नहीं था, हारी बाजी को जीतने की कला में वह निपुण था। वह झट बोला- यह तो ठीक है कि आपकी दृष्टि पहले अर्जुन पर पड़ी है, किन्तु इससे उसका पहला अधिकार तो नहीं हो जायेगा। पहले आने वाले का ही पहला अधिकार होना चाहिये।

श्रीकृष्ण ने उसकी बात स्वीकार कर ली और उससे आने का कारण पूछा। दुर्योधन बोला- महाराज! पाण्डवों ने मुझे युद्ध के लिये विवश (बाध्य) कर दिया है। आपको मेरी सहायता करनी है।

श्रीकृष्ण ने सुना और फिर अर्जुन की ओर घूम कर आने का कारण पूछा। अर्जुन ने भी काफी अपनी बात कह कर सहायता की याचना की।

श्रीकृष्ण गम्भीरता से बोले- आप लोग सुनें। मैंने सहायता को दो भागों में विभक्त किया है। एक ओर मेरी सारी सेना और सारी युद्ध सामग्री रहेगी तो दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा। इसके अलावा मैंने निश्चय किया है कि मैं शस्त्र नहीं ग्रहण करूँगा, युद्ध नहीं करूँगा। इन दोनों भागों में से एक को छांटने का प्रथम अवसर मैं दुर्योधन को देता हूँ।

दुर्योधन को बड़ी खुशी हुई। उसने एक क्षण में निर्णय कर कहा- नारायण! आप मुझे अपनी सर्व सेना और युद्ध सामग्री दे दें।

श्रीकृष्ण ने स्वीकार कर लिया और सेना के नाम आदेश प्रसारित कर दिया। दुर्योधन खुशी-खुशी वहाँ से चल दिया। उसे अपने भाग्य पर गर्व हो उठा। अब कृष्ण अर्जुन से बोले- अर्जुन! तुम तो घाटे में रहे। निःशस्त्र मेरा क्या उपयोग होगा?

अर्जुन गद्गद् होकर बोला- कृष्ण! मेरे भाग्य अच्छे हैं, मैं जो चाहता था, वह मुझे मिल गया। यदि मांगने का प्रथम अवसर मुझे मिल जाता, तब भी मैं यही मांगता। मुझे सेना नहीं चाहिये। मुझे तो आपकी आवश्यकता है। बस, मेरी एक प्रार्थना है, वह आपको स्वीकार करनी होगी।

श्रीकृष्ण उत्सुकता पूर्वक बोले क्या बात है, बोलो- युद्ध में मेरे सक्रिय भाग लेने के अतिरिक्त जो भी कहो वे सब स्वीकार हैं।

अर्जुन बोला- मैं नहीं चाहता, आप अपना वचन मेरी खातिर भंग करें। मैं चाहता हूँ कि मेरे रथ के सारथी बनकर मुझे आप मार्गदर्शन करते रहें।

श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर स्वीकृति दे दी। तभी कृष्णजी के बड़े भ्राता बलभद्र जी वहाँ आ गये। दोनों ने उनकी समुचित अभ्यर्थना की।

बलभद्र ने पूछा-आज एकाएक अर्जुन यहाँ पधारे हैं तो अवश्य कोई न कोई महान् प्रयोजन होगा।

कृष्ण ने सारी बातें कह सुनाई। बलभद्र को अपने प्रिय शिष्य दुर्योधन की मूर्खतापूर्ण पसन्दगी पर दुःख हुआ। वे क्षोभ और वेदना भरे स्वर से बोले- दुर्योधन ने जीवन की सबसे बड़ी भूल की है। **भौतिक साधनों का बल नहीं होता, व्यक्तित्व और बुद्धि का ही बल वास्तविक बल होता है।** युद्ध में सेना नहीं लड़ती, बुद्धि लड़ती है। दुर्योधन ने सेना पसन्द की, अर्जुन के हिस्से में बुद्धि आई।

श्रीकृष्ण ने विनोद में बलभद्र से पूछा-दादा! तुम किस पक्ष की ओर रहोगे। बलभद्र बोले- कृष्ण! तू क्या मेरी बुद्धि की परीक्षा लेना चाहता है? तूने अपने अतिरिक्त सारी सेना दुर्योधन को दे दी तब स्वभावतः मुझे भी उसी ओर जाना पड़ेगा। किन्तु जो मूर्खता ये कौरव और पांडव कर रहे हैं, क्या वही मूर्खता मैं भी करूँगा? क्या मैं तेरे विरुद्ध हथियार उठाऊँगा? मैंने निर्णय कर लिया है कि मैं इस युद्ध में किसी पक्ष की ओर से भाग नहीं लूंगा। बल्कि मैं यहाँ से कहीं चला जाऊँगा, जहाँ मैं भाइयों के इस सर्व विनाशकारी युद्ध को अपनी आँखों से न देख सकूँ।

बलभद्र ने जो कहा था वह सत्य सिद्ध हुआ। दुर्योधन बुद्धि की परीक्षा में हार गया। फलतः, अपने गलत निर्णय के कारण वह युद्ध में भी पराजित हो गया। उसमें सही समय पर सही निर्णय लेने की बुद्धि नहीं थी, जो कि कृष्ण में थी। इसलिये अधिक सेना होने पर भी दुर्योधन विजयी नहीं हो पाया और पाण्डव कम सेना होते हुए भी कृष्ण की बुद्धि (चतुराई) के कारण विजयी हुए।

वास्तव में यदि कोई धर्मात्मा न्यायमार्ग पर आरूढ़ है तो वह सेना आदि के बल से हीन होता हुआ भी अन्त में अपने पुण्य व बुद्धिबल के प्रताप से विजयी होता है। अन्यायी मानव की अवसर आने पर बुद्धि बिगड़ जाती है। अतः न्याय मार्ग का अनुसरण कल्याणकारी है।

शिक्षा- सत्य की ही विजय होती है,समय की अपेक्षा न करें।

"दुर्जन-स्वभाव"

गुणिनां गुणेषु सत्स्वपि, पिशुनजनो दोष मात्र मादत्ते।
पुष्पे फले विरागी, क्रमेलकः कण्टकौघमिव।।

अर्थः- गुणी मनुष्यों के गुणों के रहते हुए भी दुर्जन दोष को ही ग्रहण करता है; जैसे फूल और फलों से विरक्त हुआ ऊँट काँटो को ही ग्रहण करता है।

मानव से महान् कैसे?

एक दिन जल से भरे हुए घड़े के मुँह पर रखी हुई कटोरी ने घड़े से कहा- तुम प्रत्येक बर्तन को चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, अपने ठण्डे जल से भर देते हो, किसी को भी खाली नहीं लौटाते किन्तु मुझे कभी नहीं भरते जबकि मैं हमेशा तुम्हारे सिर पर ही रहती हूँ। ऐसा क्यों?

घड़े ने शान्त भाव से उत्तर दिया- अन्य सब बर्तन मेरे पास आकर झुकते हैं, इसलिये मैं उन्हें अपने ठन्डे जल से भर देता हूँ। किन्तु तुम कभी झुकती नहीं। सदैव मेरे ऊपर घमण्ड से बैठी रहती हो। अतः मैं भरता नहीं। अगर तुम भी जरा झुको तो जल से खाली नहीं रहोगी।

वास्तव में **नम्रता से ही कार्य सिद्ध होता है।** यदि यह गुण मानव में आ जाय तो मानव, महान् हो सकता है।

शिक्षा- विनम्र ही भरता है।

ज्ञानमद का परिणाम

भगवान् महावीर के समवसरण में गौतम द्विज आये और ज्ञान नेत्र खुलते ही दीक्षा धारण कर गणधर बन गये। अब ये मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान के धारी थे।

भगवान् की दिव्यध्वनि खिरने लगी। यह देखकर मुनि मस्करीपूर्ण को बहुत दुःख हुआ। यह विचारने लगा कि मुझ जैसे भगवान् पार्श्वनाथ के गणधर के प्रमुख शिष्य और ग्यारह अंग के अधिकारी विद्वान के होते हुए भगवान् महावीर की वाणी क्यों नहीं खिरी? यह तो मेरा घोर अपमान है। ऐसा सोचकर उसने भगवान् की निन्दा प्रारम्भ कर दी और तभी से उसने दुनिया में नया सिद्धान्त बनाया कि अज्ञान से ही मुक्ति होती है।

ज्ञान का मद क्या-क्या अनर्थ नहीं करवाता?

शिक्षा- मद मत करो, अन्यथा पद चला जाएगा।

शान्ति की खोज

राजकुमारी मल्लिका अनिन्द्य सुन्दरी थी। रति भी उसकी रूप छटा देखकर अचकचा गई थी। उसके रूप लावण्य और सौंदर्य की चर्चा इन्द्र की अप्सरायें भी करती थीं।

उसका शरीर जितना सुन्दर था उतना ही स्वच्छ और आत्मा भी उतनी ही पवित्र थी। सांसारिक भोगों में उसकी भी आसक्ति नहीं थी। वह बचपन से ही संसार की क्षणभंगुरता शरीर की नश्वरता और विभूति की चंचलता का विचार कर आत्मनिमग्न रहती थी। यौवन ने अंग-अंग में कब प्रवेश किया इसका पता यद्यपि कुमारी को नहीं था, पर उस लौ पर शलभ आ-आकर मंडराने लगे। अनेकों राजकुमार उस पर अपने को न्यौछावर करने के लिए उसकी कृपा कोर के भिखारी बन रहे थे।

रूपसी मल्लिका ने देखा कि मेरा यह सौन्दर्य स्वयं मेरे लिये भार हो रहा है और माँ-बाप तथा बन्धुजन चिंतित हो रहे हैं। उसने यह समझा कि उसका ही रूप उसे खाये जा रहा है तो उसने एक दिन पिता से कहा कि जो-जो राजकुमार मुझसे विवाह करना चाहते हैं, उन सबको बुलवाइये। मैं स्वयं उनसे बात करके निश्चय करूँगी।

स्वयंवर का दिन निश्चित हुआ। कुमारी ने आठ दिन पहले ठीक अपनी ही आकृति और रूप की अनेक पीली स्वर्ण की मूर्तियाँ बनवाई। जो भोजन पानी लेती थी वही भोजन पानी उन मूर्तियों के भीतर ढक्कन खोलकर डालती जाती थी।

निश्चित दिन पर सब राजकुमार शोभा-सज्जा के साथ उपस्थित हुए। सब के मन आशा से उत्तरंग हो रहे थे। कुमारी ने एक-

एक करके राजकुमारों को उन कमरों में आमंत्रित किया जिनमें वे मूर्तियां सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित हो अलग-अलग खड़ी थीं। उसने प्रत्येक राजकुमार को उसके अंग प्रत्यंग लावण्य रसपान कराके कहा कि आप जिस प्रकार से इसके बाह्य छठा के ही लोलुपी हो? राजकुमारों ने जब कहा कि हम तो इस रूप की माधुरी पर पूरी तरह न्यौछावर हैं, तो राजकुमारी ने एक-एक राजकुमार के सामने एक-एक मूर्ति के ढक्कन क्रमशः खोले। ढक्कन खुलते ही सड़ा-गला अन्न-पानी बाहर भरभरा पड़ा और समस्त प्रकोष्ठ असह्य दुर्गन्ध से व्याप्त हो गया। राजकुमार अपनी नाक दबाकर ज्यों ही भागने लगे, त्यों ही कुमारी ने उनसे कहा- ठहरो! अभी तो इन मूर्तियों का एक ही ढक्कन खोला गया है तो भी आप नाक-भौं सिकोड़कर विरक्ति से भर उठे हैं। कदाचित यह पूरी मूर्ति, अनावृत करदी जाय तो.....। सच मानिये, जो भोजन पानी गत सप्ताह मैंने लिया है वही इन मूर्तियों में भी डाला गया है। क्या इस चर्म शरीर की बहुत अच्छी दशा है? अपनी कामनाओं और अभिलाषाओं के प्रतिच्छाया स्वरूप इस मुग्धापोषा रूपसी रति अंगना कामिनी विलासिनी और रामा का अन्तःसार देखा। विषयकोट! जरा जी भरकर इसे देखो, चाटो सूंघों और छुओ।

समस्त राजकुमार सिर नीचा किये सुन रहे थे और लोगों ने देखा कि कुमारी मल्लिका चुपचाप आत्म-साधना के पथ की पथिक बन शान्ति की खोज में जा रही थी।

शिक्षा- देह को देखने से वासना भड़कती है और देही को देखने से साधना बढ़ती है।

अभ्यास से भ्रम गया

एक जौहरी था, उसकी आयु पूर्ण हो गई। पुत्र था तो, पर निखट्टू। पिता की मृत्यु के पश्चात् अलमारी खोली और कुछ जेवर निकाल कर ले गया- अपने चाचा के पास। 'चाचा जी इन्हें बिकवा दीजिये।' चाचा भी जौहरी था, सब कुछ समझ गया, कहने लगा बेटा आज न बेचो इन्हें, बाजार में ग्राहक नहीं हैं। बहुत कम दाम उठेंगे। जाओ जहाँ से लाये हो वहीं रख आओ इन्हें और मेरी दुकान पर आकर बैठा करो। घर का खर्चा दुकान से उठा लिया करो। उसने वैसा ही किया और कुछ महिनों बाद पूरा जौहरी बन गया। अब चाचा ने कहा, 'बेटा जाओ आज ले आओ वह जेवर।' आज बाजार में ग्राहक हैं। बेटा तुरन्त गया। अलमारी खोली, जेवर के डिब्बे को देखा तो भली प्रकार मालूम हो गया कि ये सब तो असली जेवर नहीं हैं। मैं भ्रम से इनको असली समझे हुआ था, अतः **ज्यों ही भ्रम गया त्यों ही दुःख दूर हुआ।** अर्थात् संसार के अज्ञानी प्राणी इन्द्रिय सुख को ही असली सुख मान रहे हैं, उनको श्रीगुरु असली (वास्तविक) सुख का स्वरूप समझाते हैं और ये जीव जब सहज सुख को ही वास्तविक सुख समझ कर उसका अनुभव करते हैं, तब इन्द्रिय सुख में सुख वृद्धि का भ्रम दूर हो जाता है और ये तब सुखी हो जाते हैं। सेठ पुत्र ने भी अपने चाचाजी के पास पहुँच कर अपनी भूल स्वीकार करली और तब यथार्थ ज्ञानी होकर व्यवहार में भी सुखपूर्वक रहने लगा।

शिक्षा- भ्रम जब तक रहता है, तब तक अज्ञान रहता है।

सत्य से मुक्ति

जंगल में स्वतंत्र विहार करते हुए एक पक्षी को सम्राट के पिंजरे में बंदी बना लिया गया। रहने के लिए सोने का पिंजरा, खाने के लिए मीठे फल और मेवा, पीने के लिए मधुर शीतल जल। कुल मिलाकर सारी सुविधाएं वहाँ उपलब्ध थीं, पर पक्षी का मन नहीं लगा। पिंजरे के बंधन से मुक्त होने के लिए वह तड़पता रहा, पर मुक्त नहीं हो सका।

एक दिन पक्षी ने एक फकीर का गीत सुन। वह गा रहा था कि **'मुक्ति का एकमात्र मार्ग है- सत्य की अभिव्यक्ति। संसार में सारभूत तत्त्व कोई है तो वह सत्य है।'** अनेक व्यक्तियों ने उस गीत के बोल सुने, पर शायद किसी का ध्यान केंद्रित नहीं हुआ। पक्षी ने उसको पकड़ लिया। अब वह अपनी मुक्ति के लिए सत्य का प्रयोग करने के लिए आतुर हो उठा।

सम्राट अपने सभासदों के साथ मंत्रणा कर रहे थे। किसी पड़ौसी देश को पराजित करने के लिए उन्होंने योजना बनाई। उसी समय उसका राजदूत वहाँ पहुँचा। अनौपचारिक वार्ता में उस देश के साथ मैत्री-संबंध स्थापित करने की चर्चा चली। पक्षी सब कुछ सुन रहा था। उसने अवसर देखा और पूर्व निर्धारित योजना की सारी बात कह दी। आवृत सत्य को अभिव्यक्त कर दिया। यह सुनकर राजदूत स्तब्ध हो गया तथा सम्राट भी उत्तेजित हुआ। उसने आदेश दिया-'इस पक्षी में थोड़ी सी समझदारी नहीं है। कितनी मनगढ़ंत बात करता है। इसे पास में रखने से अनर्थ हो जाएगा। किसी सुदूर जंगल में ले जाकर छोड़ दो इसको।'

सेवकों ने सम्राट की आज्ञा का पालन किया। वे लोग इतनी सुख-सुविधाओं से वंचित करने वाले पक्षी के भाग्य को दोषी ठहरा रहे थे। पक्षी खुश हो रहा था। विस्तृत उन्मुक्त गगन की गोद में उड़ान भरकर उसने अतिरिक्त आत्म-तोष का अनुभव किया। सत्य से मुक्ति की उपलब्धि में उसकी आस्था असंदिग्ध हो गई।

शिक्षा- पिंजरे की तरह संसार में सुख है, पर आत्म-स्वतंत्रता नहीं।

''मौन-महिमा''

आगमन विघ्नहरणं, मैत्रीकरणं विवाद-संहरणम्।
रत्नत्रय-संरक्षण-मज्ञान-विनाशकरणमपि काले।।

अर्थः- मौन सदा ही आगमन संबंधी विघ्नों को हरने वाला है, मित्रता को करनेवाला है, विवाद को हरनेवाला है, रत्नत्रय का संरक्षण करनेवाला है और समय पर अज्ञान का नाश करनेवाला भी है।

आकांक्षाओं का दुष्फल

एक व्यक्ति नौकरी करता था। उसे वेतन कम मिलता था। उसने कई बार मालिक से वेतन बढ़ाने का अनुरोध किया, पर बात बनी नहीं। वह परेशान हो गया। उसकी पत्नी ने परेशानी का कारण पूछा। कारण जानने पर वह बोली- 'तुम बात करना जानते नहीं। मालिक के पास जाओ और कहो कि माँ बीमार है, पिता को लकवा मार गया, सास मेरे पास रहती है, बच्चे पढ़ते हैं, मकान बनाना है, एक बच्चे की शादी करनी है। इतने सारे काम, इतने कम वेतन से कैसे होंगे?'

उसने पत्नी के आदेश का पालन किया। वह शाम को हसते-हसते घर लौटा। पत्नी ने पूछा- 'वेतन बढ़ गया?'

वह बोला- 'वेतन क्या बढ़े, मालिक ने कहा कि तुम्हारे पास कामों की इतनी लंबी सूची है। इसलिए तुम दफ्तर में क्या काम करोगे? इस बात के साथ उसने मेरी छुट्टी कर दी।'

शिक्षा- बात को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने से लाभ के बजाय हानि होती है।

काले सिर वाले की शक्ति

शेर की माँ ने अपने बेटों को सीख दी- 'बेटा! तुम जंगल में अकेले घूमते हो। तुमको और किसी से डरने की जरूरत नहीं है, पर तुम काले सिर वाले से डरते रहना। कभी उसके सामने मत जाना।' शेर ने अपनी माँ को आश्वस्त करते हुए कहा- 'माँ! तू चिंता मत कर। मैं तेरी पूरी बात ध्यान में रखूँगा।'

एक दिन शेर जंगल में घूम रहा था। सहसा उसकी नजर आदमी पर पड़ी। उसे माँ की बात याद आ गई। वह उल्टे पाँव दौड़ने लगा। इधर आदमी ने शेर को देखा। वह कांप उठा। उसने भी दौड़ना शुरू कर दिया। कुछ समय बाद शेर ने पीछे मुड़कर देखा कि आदमी उसकी ओर पीठ किए दौड़ रहा था। उसे आश्चर्य हुआ। उसने साहस जुटाया और कहा-'ओ काले सिर वाले! भाग क्यों रहे हो? एक बार ठहरो।'

आदमी और शेर के बीच लंबा फासला था, फिर भी उसने शेर की आवाज सुन ली। वह अपने स्थान पर खड़ा होकर बोला-'क्या काम है?' शेर ने पूछा- 'क्या तुम मुझे मारने के लिए आए हो?' आदमी ने सोचा- 'यह उलटी गंगा कैसे बह रही है? अब भागने में कोई लाभ नहीं है। आदमी खड़ा रहा। शेर उसके निकट आ गया। दोनों में कुछ देर तक वार्तालाप चला। उन्होंने परस्पर सामंजस्य बिठाया और एक दूसरे से निर्भय हो गए।

शेर के मन में अब भी उसकी माँ के शब्द गूंज रहे थे। उसने आदमी से कहा- मैंने सुना है कि तुम बहुत शक्तिशाली हो। क्या तुम अपनी शक्ति दिखाओगे?

आदमी बोला- इसके लिए मुझे कुछ समय चाहिए। शेर राजी हो गया।

वह आदमी एक बढ़ई था। उसने एक वृक्ष का तना चीरा। एक लोहे की मोटी शलाका मंगवाई और शेर से कहा- तुम अपना सिर इस तने के बीच में डालो।

शेर ने सिर डाला और उसने वहां शलाका लगा दी। शेर का सिर वहाँ फंस गया। आदमी बोला- मैंने तुमको कैद कर दिया। अब तुम अपनी शक्ति लगा कर उससे छुटकारा पाओ।

शेर ने सारी शक्ति लगा दी, पर वह वहाँ से हिल भी नहीं सका।आखिर आदमी ने शलाका निकाल कर उसे मुक्त किया। शेर इस बात से बड़ा प्रभावित हुआ। उसने आदमी के साथ दोस्ती कर ली।

शिक्षा- बुद्धि के द्वारा शक्तिमान प्राणी को भी परास्त किया जा सकता है।

सत्ता का प्रभाव

एक संन्यासी था। वह सदा अपनी तप-साधना में लीन रहता था। उसकी साधना की सुवास दूर-दूर तक फैल गई। उसके अंतःकरण से बहनेवाली मैत्री, प्रेम और करुणा की धाराओं ने वायुमंडल और निकटवर्ती प्राणी हृदयों को इतना प्रभावित किया कि जन्म से शत्रुता रखने वाले प्राणी भी अपना पारस्परिक वैर-भाव भूलकर वहाँ प्रेम से रहते थे।

संन्यासी की प्रसिद्धि और बढ़ते हुए प्रभाव के कारण एक दिन देवराज इंद्र का आसन डोल उठा। इंद्र घबराया और सोचने लगा कि कहीं यह तपस्वी मेरा आसन न छीन ले। अपने आसन को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है कि तपस्वी को उसकी साधना से विचलित करूँ। उसे एक उपाय सूझा। उसने ब्राह्मण का रूप बनाया। हाथ में एक तलवार ली और संन्यासी की कुटिया के पास से गुजरा। जाते-जाते उसने कहा- बाबा! मुझे आगे जाना है। इस तलवार को साथ रखकर क्या करूँगा? आपके पास रख दूँ, लौटते वक्त ले लूंगा। मैं अभी-अभी आता हूँ।'

संन्यासी ने बहुत देर तक उसकी प्रतीक्षा की, किंतु ब्राह्मण तो फिर लौटा ही नहीं। उसे लौटना भी नहीं था। संन्यासी अब तलवार को कहाँ रखे? वह उसे अपने पास रखने लगा। इससे पास रहने वाले अन्य पशु भयभीत होने लगे। सबकी भावनाएं भी बदलने लगीं। हिंसा और प्रतिहिंसा की भावनाएं जागने लगीं। तपस्वी का प्रभाव भी समाप्त होने लगा। उसकी शांति और समाधि खंडित हो गई। मन विचलित हो गया। इससे इंद्र का आसन पुनः जम गया। एक निमित्त ने समस्या खड़ी कर दी।

शिक्षा- सत्ता, संपत्ति और समस्याओं में उलझा व्यक्ति विशिष्ट उपलब्धि नहीं पा सकता।

राजा की नीति

एक राजा वेश-परिवर्तन कर घूम रहा था। वह एक ईख के खेत में जा पहुँचा। बुढ़िया ने उसका सत्कार किया। राजा ने कुछ इधर-उधर की बातें कर ईख का रस पीने की इच्छा प्रकट की । बुढ़िया ने एक ईख पेरा और प्याला भर दिया। राजा ने प्याला पी लिया और मन ही मन सोचा- ईख बहुत मीठा है, इस पर कर कम है। आज मैं जाकर कर बढ़ा दूँगा। राजा ने एक प्याला और मांगा। बुढ़िया ने एक ईख पेरा, पर प्याला नहीं भरा। राजा ने पूछा- बुढ़िया! प्याला क्यों नहीं भरा? बुढ़िया ने कहा- भाई! मेरे देश के राजा की नीयत खराब हो गई है, इसलिए प्याला नहीं भरा।

इस घटना का राजा के मन पर भारी असर हुआ। उसने कर कम करने की बात सोची और एक प्याला और मांगा। बुढ़िया ने ईख पेरना शुरू किया तो पौन ईख से ही प्याला भर गया। राजा ने विस्मय के साथ पूछा- बुढ़िया! प्याला पौन ईख से कैसे भरा? बुढ़िया ने कहा- भाई! मेरे देश के राजा की नीति पहले से भी अच्छी हो गई है? राजा आश्चर्यचकित हो लौट चला।

शिक्षा- प्रशासक की जैसी नीयत और नीति होती है, वैसी ही प्रजा की प्रीति होती है।

विश्वास की गहराई

एक प्रसिद्ध संत को प्यास लगी। वे कुएं पर गए। उन्होंने बाल्टी और रस्सी की तलाश की। जब नहीं मिली तो वे वहीं बैठकर विश्राम करने लगे। कुछ समय बाद वहाँ हिरणों का झुंड आया। वह कुएं की ओर बढ़ा। पानी ऊपर तक आ गया। हिरणों ने पानी पी लिया। संत अपने स्थान से उठकर आगे बढ़े। तब तक पानी नीचे चला गया। संत देखते ही रह गए। वे प्रभु के प्रति उपालंभ भरे स्वरों में बोले- प्रभो! तुमने यह क्या किया? क्या तुम्हारे मन में भी पक्षपात है? तुमने इन जानवरों को पानी पिला दिया और तुम्हारा भक्त कब से प्यासा बैठा है?

प्रभु ने कुछ कहा या नहीं, पर संत को आवाज सुनाई दी- हे साधो! तुझे मेरा भरोसा कहाँ है? यहाँ पहुँचकर भी तू बाल्टी और रस्सी खोज रहा है। जानवर भोले हैं तो क्या हुआ, मेरे प्रति इनका भरोसा कितना गहरा है। ये कुएं पर इस तरह झुके मानो ऊपर तक पानी हो। इनके भरोसे की हत्या कौन कर सकता है?

शिक्षा- हमारी आस्था निर्विकल्प होती है, तो फल भी शीघ्र मिलता है।

सरस्वती कुछ कहना चाहती है

एक बार विद्या विद्वानों के पास गई और बोली- मैं आपकी निधि हूँ। आप मेरी रक्षा करें। विद्वानों ने पूछा- देवि! तुम्हें क्या तकलीफ है? तुम स्वयं को इतनी असहाय महसूस क्यों कर रही हो? विद्या ने अपने मन की व्यथा खोलते हुए कहा- आप जिस किसी व्यक्ति के साथ मेरा गठबंधन कर देते हैं, इसमें मुझे बड़ा दुःख होता है। विद्वानों ने विद्या देवी की आकृति पर उभरी हुई पीड़ा की रेखाओं को स्पष्ट रूप से पढ़ लिया। वे उसके प्रति करुणा से भरकर बोले- देवी! साफ-साफ कहो। तुम चाहती क्या हो? विद्या बोली- **'नासूयकायानृजऽयताय मां देहि येनाहं वीर्यवती स्याम।'** मुझे तीन प्रकार के लोगों से बचाओ।

प्रथम वे लोग जो असूया अर्थात् ईर्ष्या से भरे रहते हैं। वे दूसरे के गुणों को भी दोष रूप में देखते हैं। दूसरी कोटि में वे लोग हैं, जो कुटिल हैं। छल-बल के प्रयोग से दूसरों को धोखा देना ही उनका काम है। तीसरी कोटि में वे लोग हैं, जो असंयमी हैं। अपनी अनियंत्रित आकांक्षाओं को भरने के लिए लोग गलत से गलत काम कर लेते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति सर्वथा अपात्र हैं। इनके हाथों में सौंपकर आप मेरे व्यक्तित्व को धूमिल करते हैं और गलत तत्त्वों को प्रोत्साहन देते हैं।

शिक्षा- ईर्ष्या, कुटिलता और असंयमी पात्रों को विद्या नहीं देना चाहिए।

आप क्या बनना चाहते हैं?

एक बार एक स्कूल में अध्यापकों ने अपने छात्रों से पूछा- अपने जीवन में तुम क्या बनना पसंद करोगे? एक छात्र ने कहा- मैं एक वैज्ञानिक बनना चाहता हूँ, इसीलिए मैं एम.एस.सी. करना पसंद करूँगा। दूसरे ने कहा- मैं इंजीनियरिंग के क्षेत्र में जाना पसंद करूँगा, क्योंकि मैं एक कुशल इंजीनियर बनना चाहता हूँ। इसी प्रकार सबने अपने-अपने मनपसंद विषय बतलाए, फिर अध्यापक महोदय ने उस छात्र की ओर इशारा करते हुए पूछा, जो कक्षा में सबसे अधिक शरारती व उद्दंड था। उस छात्र ने कहा- सर! मेरा मन पढ़ने में बिल्कुल नहीं लगता। आप स्वयं देख रहे हैं कि इसी कक्षा में मेरा तीसरा वर्ष चल रहा है। इस स्थिति में मैं अध्ययन के क्षेत्र में आगे बढ़ पाऊँगा, यह संभव नहीं है। बिना अध्ययन किए मैं वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर आदि तो बन नहीं सकता। हाँ, देश का नेता मैं अवश्य बन सकता हूँ, क्योंकि नेता के लिए किसी भी योग्यता का कोई प्रमाण-पत्र भी जरूरी नहीं होता, फिर जिस योग्यता का प्रमाण पत्र एक नेता को चाहिए, वे सारे गुण मेरे में आप बचपन से देख ही रहे हैं। जहाँ भी उपद्रव या हड़ताल करवाना हो, किसी के विरोध में आंदोलन खड़ा करना हो, अपने समर्थन में नारेबाजी करवाना हो, इन सब कार्यों में मैं सदा अगुआ रहा हूँ। इसलिए मेरे जीवन का उद्देश्य एक नेता बनना ही है।

शिक्षा- अपनी योग्यताओं के अनुरूप अपने भविष्य का चयन करें।

वोटों की चाह में

किसी गाँव में एक ईमानदार आदमी रहता था। एक दिन उसी गाँव के दस बेईमान व्यक्ति उसके घर गए और बोले- तुम मर चुके हो। हम तुम्हें श्मशान ले जाएंगे और जलाएंगे। ईमानदार व्यक्ति ने कहा- मैं जिंदा खड़ा हूँ। इस हालात में तुम मुझे श्मशान कैसे ले जा सकते हो? उसने बहुत कहासुनी की, पर उन्होंने एक नहीं सुनी। आखिर वह बोला- गाँव के प्रधान के पास चलो। अगर वह कह देगा कि मैं मर गया हूँ तो तुम्हारी बात मान लूंगा।

दसों आदमियों के साथ वह प्रधान के घर पहुँचा। उसने सारी रामकहानी सुना दी। पूरी बात सुनकर प्रधान बोला- मैं जानता हूँ कि तुम जिंदा हो, पर ये दस आदमी मिलकर जो बात कह रहे हैं, उससे मैं भी इन्कार नहीं कर सकता, क्योंकि इनके कहे अनुसार तो तुम अकेले व्यक्ति ही मरोगे, पर मैंने तुमको जिंदा कह दिया तो मेरे ये दस वोट मारे जाएंगे।

शिक्षा- नेतागण वोटों के लिए कुछ भी कह सकते हैं।

घर-घर में मरघट बना दूँगा

एक प्रत्याशी किसी गाँव में वोट मांगने गया। एक व्यक्ति बोला कि आपको क्या वोट दें। पिछले चुनाव में कहा गया था कि गाँव में मरघट की व्यवस्था ठीक नहीं है। आपने चुनाव जीतने के बाद मरघट बनवाने का आश्वासन दिया। उस आश्वासन को पाँच साल हो गए हैं, अभी तक कहीं मरघट नहीं बना।

यह बात सुन प्रत्याशी ने कहा- 'आप मुझे एक मौका और दें। इस बार मैं घर-घर में मरघट बनवा दूँगा।'

शिक्षा- नेता उसे चुनो जो आपका हितैषी हो।

"साधु क्या है?"

साधवो जंगमं तीर्थं, स्वात्मज्ञानं च साधवः।
साधवो देवता-मूर्ती साधुभ्यः साधुना परम्।।

अर्थः- साधु चलते-फिरते तीर्थ हैं, साधु स्वात्मज्ञान है, साधु मूर्तिधारी देवता हैं और साधु से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

कौन किसको प्रणाम करता है

राजपथ पर भगवान् की रथयात्रा बड़ी धूमधाम से निकल रही है। सैकड़ों श्रद्धालुजन उस भीमकाय रथ को बड़ी श्रद्धा भावना से खींचने में लगे हैं। हजारों भक्त जन बीच-बीच में साष्टांग दंडवत प्रणाम करते हुए रथयात्रा में सम्मिलित हो रहे हैं। यह सारा उत्सव देखकर रथ, पथ और मूर्ति गर्वोत्कर्ष में मन ही मन फूले नहीं समा रहे हैं। तीनों सोच रहे हैं कि ये भक्ति, संभृत, प्रणाम, मंत्रोच्चारण, भजन-कीर्तन, जय जय का तुमुलनाद हमारे लिए ही हो रहा है। जबकि अंतर्यामी प्रभु इन सबके अज्ञानजनित अहं के उत्कर्ष पर मन ही मन हस रहे हैं। कवि इस स्थिति का मार्मिक चित्रण करते हुए कहते हैं-

रथ भावे आमी देव, पथ भावे आमी।
मूर्ति भावे आमी देव, हसे अंतर्यामी।।

रथ सोच रहा है, यह प्रणाम मुझे हो रहा है और पथ सोच रहा है मुझे। मूर्ति अपने में ही भ्रम पाले हुए है और अंतर्यामी प्रभु रथ, पथ और मूर्ति की नादानी पर हस रहे हैं।

शिक्षा- प्रशंसा में अहं मत करो, सत्य का अन्वेषण करो।

कौन-सा अपराध

एक किशोरी अपने घर के बाहर बैठी गले का हार पिरो रही थी। उसके सामने कुछ कांच के टुकड़े, कुछ मणियां और कुछ स्वर्णनिर्मित वस्तुएं रखी हुई थी। वह पूरी सावधानी के साथ एक-एक चीज उठाती और धागे में पिरो देती। उसका काम चल रहा था। उसी समय महान् वैयाकरण पाणिनि वहाँ आ गए। उन्होंने बालिका को हार पिरोते हुए देखा। वे दो क्षण रुके और बोले-

काचं मणिं कांचनमेक सूत्रे,
ग्रथ्नासि बाले! तव को विवेकः?

भद्रकिशोरी! तुम कांच, मणि और सोने को एक ही धागे में पिरो ही रही हो। तुम्हारा विवेक कहाँ चला गया?

बालिका ने सिर ऊपर उठाकर देखा। आपने सामने खड़े अपरिचित राही की बात सुनकर वह मौन नहीं रही। उसने कहा- **महामतिः पाणिनिरेकसूत्रे, श्वानं युवानं मघवानमाह-**महाशय! आप मुझे क्या कह रहे हैं। हमारे देश के महान् वैयाकरण पाणिनि ने एक ही सूत्र में श्वन, युवन और मघवन-इन तीनों शब्दों को लिया है। कहाँ कुत्ता, कहाँ मनुष्य और कहाँ इंद्र! जब महान् व्यक्ति भी ऐसा करते हैं तो मैं कौन-सा अपराध कर रही हूँ?

शिक्षा- बड़े व्यक्ति के द्वारा किया गया अपराध आप न करें।

सांप्रदायिक संकीर्णता

सांप्रदायिक विद्वेष के कारण क्रिश्चियन धर्म दो भागों में विभाजित हो गया- रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट। उस समय इंग्लैण्ड में रोमन कैथोलिक प्रशासन करते थे। वहाँ का प्रसिद्धि लेखक सर रोजन अपने बाल्यकाल में एक बार 'सेंट एनी लेन' जा रहा था। मार्ग से अपरिचित होने के कारण उसने सड़क पर खड़े व्यक्ति से पूछा- 'सेंट एनी लेन का रास्ता किधर है?'

सेंट एनी रोमन कैथोलिक थी और वह व्यक्ति न प्रोटेस्टेंट। अतः एनी का नाम सुनते ही वह उबल पड़ा। रोजर को संबोधित करते हुए उसने कहा- 'ओ पोप के कुत्ते।' एनी को सेंट किसने बनाया था? क्या तुम्हें पता है, वह किस युग में सेंट थी?

रोजन बच्चा तो था ही, घबरा गया। आगे चलकर उसने एक अन्य पथिक से पूछा- 'एनी लेन का रास्ता कौन-सा है?' पथिक कैथोलिक था। उसने इस प्रकार के प्रश्न में सेंट एनी के प्रति अवहेलना अनुभव की। वह उत्तेजित होकर बोला- 'ओ सीधे कान के कुत्ते! (इंग्लैण्ड मैं यह बहुत बुरी गाली है) एनी तुम्हारे जन्म से पहले सेंट थी और तुम्हारी मृत्यु के बाद भी सेंट रहेगी। तुम कल के छोकरे सेंट एनी का इस प्रकार अपमान कर रहे हो, तुम्हें शर्म नहीं आती?'

सर रोजर दुविधा में पड़ गया। सेंट कहे तो भी गाली और न कहे तो भी गाली। आखिर उसने एक उपाय खोज निकाला। अब वह गली-गली के नुक्कड़ पर जाकर पूछने लगा- 'इस लेन का क्या नाम है?' एक गली में पहुँचने पर उसे बताया गया कि यह सेंट एनी लेन है, तब वह अपनी मंजिल तक पहुँच सका।

शिक्षा- सांप्रदायिक विद्वेष से पैदा होने वाले कलह से विशुद्धि घटती है, सदा इससे बचना चाहिए।

आईने की टूट से बची घर की फूट

पिता की मृत्यु के बाद दो भाइयों ने जमीन, जायदाद और घर की संपत्ति का बंटवारा किया। सारा काम प्रेम से हो गया। घर में एक आदमकद आईना था। उसे लेकर दोनों भाई अड़ गए। एक आईना दोनों को कैसे मिल सकता था। दोनों के आग्रह इतने प्रबल थे कि टूटन के बिंदु तक पहुँच गए। उसी समय उनके पिता का मित्र और पुराना मुनीम वहाँ आ गया। समझौते का दायित्व उसे सौंपा गया।

उसने आईना हाथों में लिया, उसे ऊपर उठाया और धम्म से गिरा दिया। दोनों भाई निर्वाक हो गए। दो क्षण बाद वे बोले- आपने यह क्या किया? कीमती आईना टूट गया। पिता के मित्र ने कहा- मैं आईने की टूट देख सकता हूँ, पर इस घर की फूट नहीं देख सकता।

शिक्षा- संपत्ति के स्थान पर परिवार-प्रेम को सदा बढ़ावा देना चाहिए।

"क्रोध से हानि"

क्रोधो नाशयते धैर्यं, क्रोधो नाशयते श्रुतम्।
क्रोधो नाशयते सर्वं, नास्ति क्रोधसमो रिपुः।।

अर्थः- क्रोध धैर्य को नष्ट कर देता है, क्रोध शास्त्रज्ञान को नष्ट करता है, क्रोध सबको नष्ट करता है; अतः क्रोध के समान शत्रु नहीं है।

चाबी की उपयोगिता

एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से बहुत संपन्न था, पर था कंजूस। अपना और अपने परिवार का पेट काटकर उसने करोड़ों रुपये एकत्रित किए। उन सब रुपयों को उसने हीरों-पन्नों में बदल लिया। सारे जवाहरात एक पेटी में रखकर उसने ताला लगा दिया। उसे अपने बाल-बच्चों का भी भरोसा नहीं था, इसलिए पेटी की चाबी वह अपने सिरहाने रखकर सोने लगा।

एक बार रात्रि के समय उसके घर में चोर घुस गए। उन्होंने तिजोरी तोड़ी और जवाहरात की पेटी निकाली। इसी समय घर के लोग जाग गए। चोर पेटी लेकर भाग गए। लड़कों ने पिता को संबोधित कर कहा- पिताजी! आपके जीवन भर की इकट्ठी की गई संपत्ति चोर ले जा रहे हैं। पिता निश्चिंतता से बोला- पुत्रो! तुम चिंता मत करो। ये चोर मूर्ख हैं। पेटी ले जा रहे हैं, पर चाबी तो मेरे पास है। बिना चाबी पेटी कैसे खोलेंगे और कैसे जवाहरात निकालेंगे?

शिक्षा- बुद्धि नहीं है तो, पैसे की महत्ता भी नहीं है।

कौन गुरु, कौन शिष्य?

एक युवक रास्ता भूलकर भटक गया। वह जंगल में घूम रहा था। वहाँ उसे संन्यासी की झोंपड़ी दिखाई दी। भूखा-प्यासा, थका-हारा वह युवक उस झोंपड़ी में पहुँचा । वहाँ एक संन्यासी धुनी रमाए बैठा था। युवक ने भोजन मांगा। संन्यासी बोला- पहले मेरा शिष्यत्व स्वीकार करो।

युवक ने पूछा- शिष्य बनने के लिए क्या करना होता है और गुरु बनने पर क्या करना होता है? संन्यासी ने उत्तर दिया- गुरु आदेश देता है। शिष्य उसका पालन करता है। युवक दो क्षण सोचकर बोला- ऐसा भी हो सकता है क्या कि मैं आपका गुरु बन जाऊँ और आप मेरे शिष्य हो जाएं?

शिक्षा- केवल बड़प्पन की भूख व्यक्ति को ऊँचा नहीं उठने देती।

"गुरु-निंदा न सुने"

गुरोर्यत्र परीवादो, निन्दा वापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ, गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ।।

अर्थः- जहाँ गुरुओं का अपवाद या निंदा चल रही है, वहाँ कान ढ़क लेने चाहिए या अन्यत्र चले जाना चाहिए।

पत्नी द्वारा प्रतिबोध

एक बारठ कवि अच्छी कविता करने लगे थे। वे राजदरबार में अपनी कविताएं सुनाते। एक बार राजा प्रसन्न हुआ। उसने बारठजी को 'लाख पसाव' सम्मान से सम्मानित किया। दरबार में उनकी इज्जत बढ़ गई। 'लाख पसाव' पाकर बहुत खुश हुए। राजधानी से विदा होकर अपने गाँव पहुँचे, तो उन्होंने अपना डेरा गाँव के बाहर डाल दिया। परिवार वालों को सम्मान की सूचना मिल चुकी थी। वे उसके पास आकर बोले- 'घर पधारो।' बारठजी ने कहा- 'मुझे लाख पसाव' सम्मान मिला है। मैं ऐसे घर कैसे जाऊँ? आप लोग मुझे लवाजम के साथ ले जाएं।'

बारठजी के घर की स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। लवाजम की व्यवस्था नहीं हो सकी। घर के लोग उन्हें मनाकर थक गए। उन्होंने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। गाँव के अन्य लोगों ने भी उनको समझाया। वे नहीं माने। सब लोग उन्हें समझाकर थक गए। आखिर उनकी पत्नी बोली- 'आप लोग आदेश दें तो मैं जाकर उन्हें ले आती हूँ। परिजनों की आज्ञा पाकर बारठजी की पत्नी गाँव के बाहर गई। उसने कहा- यहाँ कब तक बैठे रहेंगे। आप घर पधारें। बारठजी बोले- तुझे पता नहीं है कि मुझे लाख पसाव मिला है। पत्नी ने कहा- यह खुशखबरी मुझे मिल गई। बारठजी- राजा ने मुझे इतना सम्मान दिया और घर वालों ने गाजे-बाजे भी नहीं भेजे। मैं इस रूप में घर नहीं जाऊँगा। पत्नी ने उनको प्रतिबोध देते हुए कहा-

कंता! जो कुंजर चढ़ो, रतन कचोला हाथ।
मांग्यां जो मोती मिले (तो ही) अंत भिखारी जात।।

पतिदेव आपने कभी सोचा है कि हम लोग कौन हैं? मान लीजिए कि आप को चढ़ने के लिए हाथी मिल जाए, हाथ में रत्नों का भिक्षापात्र और मांगने पर मोती मिल जाए तो भी हम रहेंगे भिखारी ही। आपको 'लाख पसाव' मिल गया तो क्या हमारी स्थिति बदल गई? पत्नी की बात बारठजी को लग गई। उनका अहं चूर-चूर हो गया। वे चुपचाप उठे और पैदल चल घर पहुँच गए।

शिक्षा -उपाधियों तथा पुरस्कारों से सम्मानित होकर भी अहं न जागे तो समझना आप पुरस्कार और उपाधियों के लायक हैं।

"शिक्षा का पात्र"

वसे गुरुकुले णिच्चं, जोगवं उवहाणवं।
पियंकरे पियांवाई, से सिक्खं लद्धु मरिहइ।।

अर्थः- जो सदा गुरुकुल में वास करता है, जो समाधि युक्त होता है, जो उपधान (श्रुत-अध्ययन के समय) तप करता है, जो प्रिय करता है, जो प्रिय बोलता है; वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

मुक्ति का मग

एक संत के पास एक व्यक्ति आया। उसने पूछा- मुक्ति का रास्ता क्या है? संत ने कहा- कब्रिस्तान में जाओ। आगंतुक बोला- बाबा! वहाँ तो जाना ही है। मैं आपके पास मुक्ति का रास्ता पूछने आया हूँ। संत ने कहा- कब्रिस्तान में जाओ और कब्र में सोए लोगों को जी भरकर गालियां दो, गालियां देते-देते थक जाओ तो लौट आना।

आगंतुक कुछ समझा नहीं। फिर भी संत की आज्ञा से कब्रिस्तान में गया और गालियां देकर लौट आया। संत के सामने पहुँच उसने फिर कहा- बाबा! मुक्ति का रास्ता बताओ। संत ने पूछा- अरे! तुम वहाँ गए नहीं। वह बोला- मैं जाकर आया हूँ। मुझे समाधान नहीं मिला। आप कृपाकर मेरे प्रश्न का उत्तर दें। संत ने कहा- तुम एक बार पुनः कब्रिस्तान में जाओ। बाबा! वहाँ जाने से क्या होगा? मुझे तो मुक्ति का रास्ता खोजना है। आगंतुक की इस बात पर संत ने कहा- इस बार तुम वहाँ जाओ और कब्र में सोए लोगों की प्रशंसा करो। आंगतुम कब्रिस्तान में गया। उसने दिल खोलकर प्रशंसा की। वह लौटकर संत के पास आ गया।

संत ने पूछा- तुम्हें रास्ता मिल गया? वह बोला- रास्ता आपने बताया ही कब? अब तक तो मैंने कब्रिस्तान के चक्कर लगाए हैं। अब बताएं मुक्ति का रास्ता। संत ने कहा- तुम कब्रिस्तान में गए। तुमने कब्र में सोए लोगों को इतनी गालियां दी। तुम्हारी गालियां सुन किसी को गुस्सा आया? किसी ने तुम्हारा कान पकड़ा? किसी ने तुमको कष्ट दिया? तुमने दूसरी बार उनकी प्रशंसा की। प्रशंसा सुन कोई कब्र से

बाहर आया? तुम्हारी प्रशंसा उनको प्रसन्न कर पाई? आगंतुक विस्मित होकर संत की बात सुन रहा था। वह बोला- बाबा! ऐसा तो कुछ नहीं हुआ। हो भी नहीं सकता। कब्र में सोए लोग ऐसा कैसे कर सकते हैं? संत ने समाधान की भाषा में कहा- सम्मान और अपमान में सम रहना ही मुक्ति का रास्ता है। कोई तुम्हारी निंदा करता है, कोई प्रशंसा करता है। तुम इन दोनों स्थितियों में संतुलित रह सको तो इससे बढ़कर दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

शिक्षा- निंदा-प्रशंसा के बीच साम्य-भाव से जीना ही मुक्ति का प्रथम सोपान है।

"पंच-दकार"

दानं दारा दमोऽक्षाणां, दर्शनं देवपूजनम्।
दकाराः पञ्च वर्तन्ते, दुर्गतिं नैवयाति सः॥

अर्थ:- दान, दया, इन्द्रियों का दमन, दर्शन और देव पूजन; ये पाँच दकार जिसके पास है; वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

सफलता का सूत्र- कार्यनिष्ठा

एक बार रेल विभाग का प्रबंधक बीमार हो गया। उसे देखने गए लोगों में वह रेलवे स्टेशन का मास्टर भी था। प्रबंधक को चिंतित देख उसने अपनी सेवाएं समर्पित कीं। उसे तीन दिन काम करने का अवसर मिला। उसने इतना अच्छा काम किया कि सबके मुँह पर उसकी प्रशंसा थी। इससे उसका विश्वास और अधिक पुष्ट होता रहा।

एक दिन वह भी आ गया जब प्रबंधक को निवृत्त होना था। उसने रेलवे मास्टर को अपने पास बुलाकर डांटा। बिना वजह डांट और उसके साथ नौकरी से छुट्‌टी। उसके मन पर आघात लगा। वह उसे झेलने की मानसिकता बना ही रहा था कि प्रबंधक ने कहा- यदि तुम झाड़ू लगाने का काम कर सको तो तुम्हें यहाँ पुनः नियुक्त किया जा सकता है। कहाँ तो प्रबंधक बनने का सपना और कहाँ यह काम। उसका सपना चूर-चूर हो गया। उसकी आँख में आंसू आ गए। फिर भी उसने साहस कर वह नौकरी स्वीकार कर ली।

मानसिक अवसाद के बावजूद उसकी काम में निष्ठा कम नहीं थी। झाड़ू लगाने का काम भी वह पूरी जागरुकता से करता। इस नई नियुक्ति को दो दिन भी नहीं हुए कि उसको प्रबंधक के पद पर काम करने का नियुक्ति पत्र मिल गया। इस अप्रत्याशित सफलता से वह स्वयं अभिभूत था। बाद में उसे ज्ञात हुआ कि शैक्षणिक प्रमाणपत्र न होने के कारण एक नई विधि से उसका परीक्षण किया गया था। उसमें वह शत-प्रतिशत सफल हुआ।

शिक्षा -कार्य छोटा या बड़ा नहीं होता, उसके प्रति निष्ठा का भाव महत्त्वपूर्ण है।

बुरा कौन?

एक चंडालिनी जा रही थी। उसके हाथ में मैले का छबड़ा था। सिर पर मरा हुआ कुत्ता था। दोनों हाथ लहुलूहान थे। एक हाथ में पानी का पात्र था। वह रास्ते में पानी का छिड़काव करती हुई चल रही थी। सामने से एक ऋषि आ रहे थे। उन्हें चंडालिनी का यह व्यवहार अटपटा-सा लगा। वे दो क्षण रुके और पूछ बैठे-

कर खप्पर सिर श्वान है, लहू जु खरड़े हत्थ।

छटकत जल चंडालिनी? ऋषि पूछत है वत्त।।

चंडालिनी ऋषि की बात सुन खड़ी हो गई। वह बोली-

तुम तो ऋषि भोरे भए, नहि जानत हो भेव।

कृतघ्नी की चरणरज, छटकत हूँ गुरुदेव।।

ऋषि को चंडालिनी की वह हरकत एक तमाशा जैसी लगी। उसे देख कोई भी व्यक्ति ऐसा सोच सकता है, पर चंडालिनी ने जो रहस्य प्रकट किया, वह विमर्श का विषय है। उसने कहा- गुरुदेव! यह सच है कि मेरे पास गंदगी है। इसमें पाप क्या है? सेवा मेरा धर्म है। सेवा मेरा कर्त्तव्य है। सेवा मेरा पेशा है। मैं यह काम करती रही हूँ। आपका प्रश्न यह है कि रास्ते में पानी का छिड़काव क्यों करती हूँ? इसका एक कारण है। आपको पता नहीं है, इस रास्ते में मेरे आगे कौन गया? वह बड़ा कृतघ्नी है, पापी है। उसके पांवों की रजों से मेरे पैर अपवित्र न हो जाएं, इस उद्देश्य से मैं यहाँ पानी छिड़क रही हूँ।

शिक्षा- कृत-उपकार को भूलने वाला कृतघ्नी ही सबसे बुरा है।

आँख की दवा कान के लिए कैसे अच्छी?

किसी में एक वैद्य रहते थे जो केवल कान के ईलाजी थे। कर्ण रोग की उनके पास बहुत उग्र दवाइयां थीं। एक दिन एक महाशय आए और प्रश्न करने लगे कि आपके पास क्या क्या दवाइयां है और किस-किस काम की हैं। वैद्य ने कहा- कान-रोग की मेरे पास अच्छी दवाइयां हैं। महाशय को तो केवल वैद्य का उपहास करना था, फिर पूछा उन दवाइयों को आँखों के लिए आप कैसी मानते हैं? वैद्य ने कहा- महाशय! आँखों की दवाई आँख के लिए अच्छी होती है और कानों की दवाई कानों के लिए? आपका यह प्रश्न ही निरर्थक है कि कान की दवा आँख के लिए अच्छी होती है या बुरी। महाशय माननेवाले थोड़े ही थे। बोले- मैं और बातें नहीं सुनना चाहता, मुझे तो केवल यह बताइये कि आपकी दवा आँख के लिए अच्छी है या बुरी?

समय का दुरुपयोग होते देखकर वैद्यजी ने कहा- अच्छा महाशय! मेरी दवा कान के लिए अच्छी है और आँखों के लिए खतरनाक है।

महाशय जी जनता में जाकर प्रचार करने लगे कि अमुक वैद्य के पास किसी को नहीं जाना चाहिए। इनकी दवाइयां आँखों के लिए बड़ी खतरनाक होती हैं। ऐसे वैद्य को गाँव में भी नहीं रहने देना चाहिए। जिसकी दवा आँख में डालते ही आँख फूट जाए, आदि-आदि।

जो लोग वैद्य से परिचित थे, उन पर उनका कोई असर नहीं था, पर अपरिचित मनुष्यों में वही बात एक बार के लिए संदेह करती थी। वैद्य को एक बार के लिए जनता की कटु आलोचना का पात्र बनना पड़ा, पर थोड़े दिनों बाद जनता अंधेरे में नहीं रही। उसकी दृष्टि में वैद्य वैद्य था और महाशय महाशय थे।

शिक्षा- सही को सही और गलत को गलत समझने का विवेक जगाएं।

रुग्ण की सेवा स्वात्म-सेवा

एक प्रसंग बौद्ध साहित्य में मिलता है। गौतम बुद्ध का एक शिष्य अतिसार के रोग से आक्रांत हो गया। उनके पास हजारों शिष्य थे, पर किसी ने उसकी संभाल नहीं की। बुद्ध कहीं अन्यत्र विहार कर रहे थे। जब वे वहाँ आए तो उस भिक्षु को देखकर बोले- वत्स! तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ? भिक्षु ने विनम्रता के साथ कहा- भंते! मैं बीमार हूँ। बुद्ध ने वात्सल्य के साथ प्रतिप्रश्न किया- बीमारी की अवस्था में अकेले क्यों? भिक्षु ने दीनभाव के साथ निवेदन किया- भंते! अब मैं किसी के काम नहीं आ सकता, अतः मेरी सेवा नहीं होती।

यह बात सुनकर बुद्ध ने आनंद को बुलाया और दोनों ने हाथ का सहारा देकर उसे बिठाया। वस्त्र, शरीर और स्थान को स्वच्छ करके उसे वापिस लिटा दिया। फिर सब भिक्षुओं को एकत्रित करके बुद्ध बोले- भिक्षुओ! मैं कहता हूँ कि अस्वस्थ भिक्षु की सेवा करना धर्म है। बीमारी की परिचर्या तथागत की परिचर्या है। जो रुग्ण की सेवा करता है, वह स्वात्मा की सेवा करता है।

शिक्षा- रुग्ण की सेवा पुण्यवर्धक है, अस्तु स्वात्म सेवा ही है।

पक्षी की मैत्री

एक बार जंगल में दावानल लग गया। हरा-भरा खुशहाल जंगल देखते-देखते आग में झुलसने लगा। आग चंदन के वृक्षों तक पहुँच गई। एक-एक वृक्ष धराशायी होने लगे। शेष बचे हुए वृक्षों में एक वृक्ष पर एक हंस बैठा था। आग की लपटें और झुलसते जंगल को देखकर वह न घबराया, न खिन्न हुआ और न वहाँ से उड़ने के लिए उद्यत हुआ। उसकी अकर्मण्यता देखकर उसकी नन्हीं-सी जान पर द्रवित होकर वृक्ष बोला-

आग लगी वनखंड में, दाभचा चंदन-वंश।
म्है तो दाभचा पंख बिन, तू क्यूं दाझै हंस?

वनखंड में आग लग गई। चंदन वृक्ष झुलस गए। हम झुलसते हैं, क्योंकि लाचार हैं। हमारे पास उड़ने को पंख नहीं हैं। भोले हंस! तेरे पास पंख हैं। तू तो प्रतिदिन उड़ता है, फिर आज तुझे क्या हो गया? तू हमारे साथ क्यों झुलस रहा है?

पान मरोड़्या फल भख्या, बैठ्या एकण डाल।
तू दाझै मैं उड़ चलूं, जीणो कितेक काल?

ओ मेरे जीवनदाता! तुम क्या कह रहे हो? मैं सदा तुम्हारे कोमल पत्तों के साथ खेलता रहा, फल खाता रहा और एकमात्र इसी आश्रय पर पलता रहा। आज जब तुम संकट में हो, आग की लपटों में घिर रहे हो, मैं तुम्हें छोड़कर उड़ जाऊँ। कहाँ जाऊँ? आखिर मुझे कितने समय तक जीना है। यह शरीर नाशवान है। आज नहीं तो कल इसे छोड़ना ही है, पर इसके लिए मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता।

शिक्षा- संकट की घड़ियों में भी अपने उपकारी मित्र को नहीं छोड़ना चाहिए।

थोड़े के चक्कर में पूरा गया

एक भिखारी को भिक्षा में पाँच रोटी का आटा मिला। वह रोटियां बनाने के लिए चूल्हा जलाकर बैठा। उसने आटा गूंथा और पाँच रोटियों की पाँच लोई बना लीं। एक लोई कठौती में थी। दूसरी उसके हाथ में थी। तीसरी रोटी तवे पर थी। चौथी रोटी अंगारों पर सिक रही थी और पाँचवी सिकी हुई रोटी चूल्हे के पीछे रखी हुई थी। अचानक एक कुत्ता आया। वह कठौती में रखी आटे की लोई मुँह में दबाकर भागा। भिखारी अपने हाथ की लोई के साथ कुत्ते से वह लोई छीनने के लिए दौड़ा। हड़बड़ी में वह गिर पड़ा। उसके हाथ की लोई धूल में मिल गई। इधर तवे की रोटी तवे पर जल गई और अंगारे की रोटी अंगारे पर जल गई। चूल्हे के पीछे जो रोटी रखी हुई थी, उसे एक बिल्ली लेकर भाग गई। एक रोटी के साथ पाँचों रोटियां गईं।

शिक्षा- बड़ी हानि की अपेक्षा छोटी हानि झेलनीं श्रेयस्कर है।

आलंबन की शक्ति

एक वकील था। अपने जीवन की कठिन घड़ियों में वह जब कभी चिंतन की गहराई में उतरता, तब उसका एक हाथ कोट के बटन पर चला जाता था। बटन पर हाथ लगते ही उसे बड़ी राहत मिलती और हर समस्या का समाधान मिल जाता। इस क्रम से वह न्यायालय में अनेक मुकदमे जीतता गया।

एक व्यक्ति को वकील के इस रहस्य की जानकारी मिल गई। वह उसे नीचा दिखाना चाहता था। एक बार उसने धोबी को प्रलोभन देकर उसके कोट के बटन तुड़वा दिए। न्यायालय जाते समय वकील कुछ जल्दी में था, अतः यों ही कोट गले में डालकर चल पड़ा। प्रसंग पर बहस के समय थोड़ी-सी उलझन खड़ी हुई। अनायास उसका हाथ कोट के बटन पर गया। बटन गायब था, वह अपने-आपको संभाल नहीं सका। पास ही रखी कुर्सी खींचकर बैठ गया। उसका शरीर पसीने से तर-बतर हो गया और मस्तिष्क शून्य हो गया। चिंतन-शक्ति और वाक्-शक्ति की कुंठा से वह अपने काम में असफल हो गया।

शिक्षा- मानसिक धारणाओं के साथ बाह्य आलंबन भी स्वस्थ निमित्त बनते हैं।

खोपड़ी मनुष्य की

एक भिखारी हाथ में भिक्षापात्र लिए शहर में घूम रहा था, पर किसी के सामने हाथ नहीं पसार रहा था। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि वह उसी व्यक्ति से भिक्षा लेगा, जो उसके भिक्षापात्र को स्वर्ण मुद्राओं से भर देगा। शहर में बहुत धनी-मानी व्यक्ति रहते थे, किंतु किसी ने उसकी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की।

बात राजा तक पहुँची। राजा ने सुना कि उसके राज्य में एक ऐसा भिखारी घूम रहा है, जिसको भीख देने वाला कोई नहीं है। राजा की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। उसके अहं पर चोट हुई। उसने भिखारी को अपने सामने उपस्थित करने का आदेश दिया।

भिखारी राजा के सामने खड़ा था। राजा ने पूछा- क्या चाहता है? वह बोला- राजन्! यह मेरा पात्र स्वर्ण मुद्राओं से भर जाए, यही एक छोटी-सी चाह है। राजा ने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा- जाओ, इस भिखारी का पात्र स्वर्णमुद्राओं से भर दो। कोषाध्यक्ष ने आदेश का पालन किया, पर आश्चर्य! पूरा राज्यकोष खाली होने पर भी भिक्षापात्र नहीं भरा।

राजा के पास सूचना पहुँचीं। उसने भिखारी से पूछा- यह क्या बला है? वह बोला- राजन्! मुझे एक पात्र की जरूरत थी। मैं उसकी खोज में घूमता-घूमता श्माशान में पहुँच गया। वहाँ मुझे यह खोपड़ी मिली। उसी को मैंने भिक्षापात्र बना लिया। राजा ने पूछा- किसकी खोपड़ी है यह? भिखारी बोला- राजन्! यह मनुष्य की खोपड़ी है। इसमें कितना ही डाल दो, यह भरती ही नहीं है।

शिक्षा- मन की चाह कभी खत्म नहीं होती।

भय पाप का

एक बार रोम की महारानी के गले का हार कहीं खो गया। बादशाह ने घोषणा करवाई कि जिसने हार चुराया है, वह तीन दिन के भीतर-भीतर राजदरबार में लाकर उपस्थित कर दे, अन्यथा उसे मृत्युदंड दिया जाएगा।

कहा जाता है कि चोर के पैर कच्चे होते हैं। जिस व्यक्ति ने हार चुराया था, वह मौत के भय से कांपने लगा। मार्ग में चलते हुए उसने देखा कि एक संन्यासी कुटिया में ध्यान मग्न है। अपने बचाव का उसे यह अच्छा उपाय सूझा। हार को संन्यासी के पास रखकर वह भाग गया।

संन्यासी ने जब ध्यान खोला तो पास में रखे हुए हार पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसने सोचा- मैं क्यों चिंता करूँ? जिसका हार है वह अपने आप ले जाएगा।

तीन दिन व्यतीत हो गए, पर कोई हार लेने नहीं आया। चौथे दिन संन्यासी हार लेकर राजदरबार में उपस्थित हुआ। राजा ने कहा- महात्मन्! क्या मौत का भय नहीं लगा जो आज चौथे दिन हार को लेकर आए हो, तीन दिन कहाँ चले गए थे?

राजन्! मुझे मौत का भय नहीं है। संन्यासी ने गर्व के साथ उत्तर दिया। राजा ने साश्चर्य पूछा- मृत्यु का भय नहीं है तो आज फिर क्यों आए?

राजन्! आज मैं मौत के भय से नहीं, पाप के भय से आया हूँ। तीन दिन के भीतर आता तो लोग समझते कि मुझे मौत का डर है- संन्यासी ने निर्भय होकर कहा।

जो व्यक्ति पाप से डरता है, वह कभी अन्याय नहीं कर सकता, किसी को धोखा नहीं दे सकता। सच्चाई यह है कि संन्यासी ने हार चुराया नहीं था, फिर भी उसका कर्तव्य था कि वह अपने पास रखे हुए हार की राजा को सूचना दे। वह पहले दिन भी जा सकता था राजा के पास, पर वह अपने आपका परीक्षण कर रहा था कि कहीं उसके मन में मौत का भय तो नहीं छिपा है।

शिक्षा– मृत्यु से नहीं, पाप से डरो।

"कौन क्या नहीं होता"

णालस्सेण समं सुक्खं, ण विज्जा सह णिद्दया ।
ण वेरग्गं ममत्तेणं, णारंभेण दयालुया ।।

अर्थः– आलसी सुखी नहीं हो सकता, निद्रालु विद्याभ्यासी नहीं हो सकता, ममत्व रखनेवाला वैराग्यवान नहीं हो सकता और हिंसक दयालु नहीं हो सकता।

खोटा सिक्का कभी न लेना

साहूकार दुकान में बैठा था। सुबह-सुबह एक व्यक्ति दुकान पर आया। उसने कोई चीज खरीदी और एक तांबे का टका साहूकार को दिया। साहूकार ने उसको सिर पर लगाते हुए कहा- सुबह-सुबह अच्छी बोहनी हुई। कुछ समय बाद एक दूसरा व्यक्ति आया। उसने चाँदी का सिक्का दिया। साहूकार बहुत खुश हुआ। थोड़ी देर हुई और एक तीसरा व्यक्ति आया। उसने गुड़ खरीदा। उसके द्वारा दिया गया सिक्का साहूकार ने हाथ में लिया, उसे देखा और उसे लौटाते हुए कहा- यह खोटा सिक्का मुझे नहीं चाहिए।

साहूकार की दुकान के पास ही एक व्यक्ति खड़ा था। उसने पूछा- सेठ साहब! आपने यह रुपया फेंक क्यों दिया? इससे पहले आपके पास तांबे और चाँदी के सिक्के आए। उन्हें देखकर तो आप खुश थे। इस सिक्के में तांबा और चाँदी दोनों हैं। साहूकार बोला- यही तो समझने की बात है। पहले व्यक्ति ने जो सिक्का दिया, वह शुद्ध तांबे का है। दूसरा सिक्का शुद्ध चाँदी का है। इसमें दोनों का मिश्रण है। यह मिलावट काम की नहीं है। इसे हम अपशकुन मानते हैं।

शिक्षा- मिलावट कभी हितकारी नहीं होती है।

बिना जड़ के वृक्ष कैसे संभव

घने जंगल के बीच एक बहुत बड़ा बरगद का वृक्ष था। कुछ लकड़हारे जंगल से लकड़ी काटकर लौट रहे थे। मार्ग में उस विशाल वृक्ष को देखकर वे उसके नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गए। एक व्यक्ति ने वृक्ष की अनेक शाखाओं की ओर संकेत कर कहा- इन शाखाओं से यह वृक्ष कितना सुंदर लगता है। शाखाओं के कारण इसकी उपयोगिता बढ़ गई है। इधर से गुजरने वाले थके-हारे व्यक्ति यहाँ बैठकर थकान उतार लेते हैं।

दूसरा व्यक्ति बोला- तुम्हारा कथन बहुत ठीक है, पर मैं सोचता हूँ कि इस वृक्ष ने ही इन शाखाओं को फैलने का अवकाश दिया है। यदि वृक्ष नहीं होता तो शाखाओं का विस्तार कैसे होता? शाखाओं, प्रतिशाखाओं, टहनियों और इन कोमल पल्लवों का आधार तो यह वृक्ष ही है।

तीसरा व्यक्ति बोला- वृक्ष और शाखाएं अन्योन्याश्रित हैं। वृक्ष से शाखाओं की शोभा है और शाखाओं से वृक्ष की शोभा होती है। हमारे लिए इन दोनों का मूल्य है।

चौथा व्यक्ति बोला- यद्यपि वृक्ष और शाखाएं परस्पर सापेक्ष हैं, किंतु मूल मूल रहेगा। मूल वृक्ष है। यों वृक्ष शब्द में शाखाओं का भी समावेश है। मूल हैं जड़ें। जड़ें काट दी जाएं तो वृक्ष का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

शिक्षा- जड़ें सुरक्षित रहने पर ही मूल सुरक्षित रहता है।

निर्णय व सफलता का सूत्र

विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण एक युवक कबीर के पास पहुँचा। उसका अध्ययन पूरा हो चुका था। उसे नए जीवन में प्रवेश पाना था, किंतु उसके सामने दिशा स्पष्ट नहीं थीं। इसलिए वह किसी अनुभवी व्यक्ति से परामर्श लेना चाहता था। अनुभवी व्यक्ति की खोज करते-करते उसकी मुलाकात कबीर से हो गयी। कबीर ने उसका परिचय और आने का प्रयोजन पूछा। वह बोला- बाबा! पढ़ाई पूरी हो गई। अब क्या करूँ? कुछ लोग कहते हैं कि मुझे अपना धंधा कर लेना चाहिए। कुछ लोग नौकरी करने का सुझाव दे रहे हैं। कुछ मित्र मुझे शादी करने के लिए बाध्य कर रहे हैं और कुछ लोगों का कहना है कि अपने पैरों पर खड़ा होने से पहले मैं इस झंझट में नहीं जाऊँ।

समाजसेवा का आकर्षण भी मेरे सामने है। कभी-कभी आपकी तरह संत बनने का सपना भी देखता हूँ। मैं अब तक तय नहीं कर पाया हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए। इसलिए आपका मार्गदर्शन लेने यहाँ आया हूँ।

कबीर उस युवक को एक कुएं पर ले गया। वहाँ महिलाओं की भीड़ थी। कुछ महिलायें कुएं से पानी निकाल रही थीं। कुछ आपस में बतिया रही थीं। कुछ महिलायें, पानी से भरे दो-दो घड़े सिर पर रखकर बड़ी मस्ती से चल रही थीं। युवक को जाने की जल्दी थी। उसने कबीर से कहा- बाबा! मेरे लिए आपका क्या निर्देश है?

कबीर बोला- तुम इन पनिहारिनों को देख रहे हो। ये कुछ भी करें, पर इनका ध्यान अपने सिर पर रखे हुए घड़ों पर है। ये बात करें, चलें या हसें, इनके मन-मस्तिष्क से घड़े नहीं निकल पाते। तुम घड़ों के स्थान पर अपने भीतर विराजित आत्मा या परमात्मा ईश्वर को स्थापित कर लो। तुम कुछ भी करो, ईश्वर को मत भूलना। ईश्वर की स्मृति रहेगी तो जीवन में निश्चित रूप से सफल बनोगे। युवक को दिशा मिल गयी। वह आश्वस्त होकर चला गया।

शिक्षा- जो भी करो, तन्मय होकर करो, सफलता मिलेगी।

विवाद क्यों?

नववधू शादी के बाद ससुराल गई। घर का कामकाज उसने कभी किया नहीं था। आदत के अनुसार वह दिन भर खाट तोड़ती और उसकी वृद्धा सास काम करती। युवक ने इस विसंगति को देखा। उसे बहुत अटपटा लगा। उसने अपनी पत्नी को मनोवैज्ञानिक ढंग से शिक्षा देने का निश्चय किया।

एक दिन वह जल्दी उठा। हाथ में झाड़ू लेकर घर की सफाई करने लगा। माँ ने बाहर आकर देखा। पुत्र को झाड़ू लगाते देख उसे आश्चर्य मिश्रित दुःख हुआ। पुत्र से झाड़ू मांगते हुए उसने कहा- यह काम हमारा है। युवक अपनी पीड़ा को मन ही मन पीता हुआ बोला- माँ बूढ़ी हो गई हो। यह सब कब तक करती रहोगी? माँ-बेटे की बात सुन बहू बाहर आई और दर्शक की तरह खड़ी हो गई। स्थिति का जायजा लेकर वह बोली- अम्मा जी! आप दोनों विवाद क्यों कर रहे हो? एक दिन झाड़ू आप लगा लिया करें और एक दिन ये लगा लेंगे।

पत्नी की बात सुन युवक बुरी तरह झेंप गया। उसे विश्वास हो गया कि पात्रता के बिना सीख भी नहीं ली जा सकती।

शिक्षा- सीख देने के पूर्व पात्रता अवश्य देखें, अन्यथा सीख व्यर्थ जाएगी।

आदर्श विद्यार्थी

धर्मराज युधिष्ठिर को पाठ पढ़ाया जा रहा था- 'क्रोध मत करो'। धर्मराज के सब सहपाठियों ने उस पाठ को पढ़ लिया, पर धर्मराज युधिष्ठिर लंबे समय तक उस पाठ को पढ़ने में असमर्थ रहा। गुरु द्रोणाचार्य नाराज हुए। उस पर डाँट पड़ी। फिर भी उसको पाठ याद नहीं हुआ। एक दिन द्रोणाचार्य ने उसके चांटा जड़ दिया। चांटा लगने पर भी धर्मराज को क्रोध नहीं आया। उस स्थिति में उसने द्रोणाचार्य से निवेदन किया- अब मैंने पाठ पढ़ लिया। इसका मतलब क्या हुआ? युधिष्ठिर क्रोध-विजय की साधना कर रहा था। उसकी दृष्टि में पाठ को कंठस्थ करना मात्र ही पाठ को पढ़ना नहीं था, बल्कि जीवन में उसका आचरण करना था। उसने तब तक पाठ को पढ़ा हुआ नहीं माना, जब तक कि वह क्रोध-विजय की साधना में उत्तीर्ण नहीं हुआ। यह भारतीय विद्या का आदर्श है।

शिक्षा- पुस्तकीय शिक्षा की सार्थकता जीवन में उतारने से होती है।

सुधार का सही मार्ग

अध्यापक ने विद्यार्थियों को कई खंडों में विभक्त विश्व का एक नक्शा देते हुए कहा- विश्व का व्यवस्थित एवं सही नक्शा बनाओ। विद्यार्थी विभिन्न खंडों को जोड़-जोड़कर व्यवस्थित नक्शा बनाने का प्रयत्न करने लगे। घंटा भर का समय बीत जाने पर भी उन्हें सफलता नहीं मिली। अमेरिका ठीक हुआ तो अफ्रीका बिगड़ गया। अफ्रीका को ठीक बिठाया तो एशिया बिगड़ गया। एशिया ठीक किया तो यूरोप अव्यवस्थित हो गया। इस क्रम से सारे विद्यार्थी हैरान हो गए। तब अध्यापक ने उनका मार्गदर्शन करते हुए कहा- देखो, इस दुनिया के नक्शे के पीछे एक मानव की आकृति अंकित है। इस नक्शे को मानव आकृति के रूप में जोड़कर लाओ।

विद्यार्थी मानव-आकृति से सुपरिचित थे। शरीर के सारे अंगों को उन्होंने बहुत जल्दी व्यवस्थित जमाकर मानव की आकृति बना दी। मानव की आकृति बनते ही अध्यापक ने कहा- ठीक है, अब इसे उलट दो। विद्यार्थियों ने उसे उलटा तो उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ, क्योंकि विश्व का व्यवस्थित नक्शा स्वतः निर्मित हो चुका था।

शिक्षा- समाज, राष्ट्र एवं विश्व का सुधार व्यक्ति के सुधार से ही संभव है।

सिर्फ दीए में तेल चाहिए

एक विद्यार्थी पढ़ने में तेज था। उसकी बुद्धि अच्छी थी और वह मेहनत भी पूरी करता था। वह अपनी कक्षा में हमेशा प्रथम रहता था। उसकी मेहनत देखकर विद्या की देवी सरस्वती खुश हुई। वह एक दिन विद्यार्थी के पास आकर खड़ी हो गई। विद्यार्थी दीये के प्रकाश में पढ़ रहा था। उसने इधर-उधर आँख उठाकर भी नहीं देखा। बालक की एकाग्रता पर देवी को बड़ा आश्चर्य हुआ। देवी बोली- बच्चे! देखो। तेरे सामने कौन है? विद्यार्थी ने आँखें ऊँची उठाईं। सामने खड़ी ममतामयी महिला को उसने देखा, प्रणाम किया और पुनः पढ़ने लग गया।

देवी बच्चे की तल्लीनता देखकर मुग्ध हो गई। वह उसके साथ बात करना चाहती थी। उसने पूछा- वत्स! तेरे सामने कौन है? तू मुझे जानता है? बालक खड़ा हुआ और विनम्र भाव से बोला- माँ! मैं नहीं जानता। देवी ने कहा- वत्स! मैं विद्या की देवी सरस्वती हूँ। तेरी मेहनत को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं तुझे कुछ देना चाहती हूँ। बोल,क्या लेगा? विद्यार्थी बोला- माँ! आपने बड़ी कृपा की। मुझे दर्शन दिए। मुझे अभी किसी चीज की जरूरत नहीं है।

छोटे बच्चों के मन में मिठाई, खिलौने आदि का बहुत आकर्षण होता है, पर वह विद्यार्थी इन सबमें रस नहीं ले रहा था। देवी ने उससे कहा- तू कोई वरदान मांग ले। विद्यार्थी ने सोचा- मेरी माँ ने मुझे मेहनत करना सिखाया है, फिर मैं भिखारी क्यों बनूँ? वह कुछ बोला नहीं। देवी बोली- तू चाहे तो मैं तुझे बिना पढ़े ही पास कर दूंगी। विद्यार्थी इस बात के लिए भी तैयार नहीं हुआ। आखिर देवी बोली- वत्स! मैं कुछ दिए बिना लौटती नहीं। तुझे कुछ तो माँगना ही होगा। विद्यार्थी का मन मांगने के लिए राजी नहीं था। फिर भी देवी का इतना आग्रह देखकर बोला-

अच्छा माँ! एक काम करो, आप मुझे कुछ देना ही चाहती हैं तो मेरे इस दीये में थोड़ा-सा तेल डाल दें ताकि दीया बुझे नहीं और मेरी पढ़ाई में विघ्न न हो। देवी विद्यार्थी की इस विवेकपूर्ण बात को सुनकर उसके प्रति अधिक दयालु हो उठी। वह उसे बहुत कुछ देना चाहती थी किन्तु विद्यार्थी कुछ भी लेने के लिए तैयार नहीं था। आखिर देवी दीये में तेल भरकर चली गई और विद्यार्थी पढ़ता रहा। विद्यार्थियों को लगन के साथ मेहनत करनी चाहिए ताकि वे खुद के निर्माण में सफल बन सकें।

शिक्षा– विद्यार्जन में लगनपूर्वक मेहतन करें, वरदान की अपेक्षा न करें।

"समीचीन ज्ञान"

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि ।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ।।

अर्थः– जिससे तत्त्व का ज्ञान होता है, चित्त का निरोध होता है तथा आत्मा विशुद्ध होती; उसी को जिनशासन में ज्ञान कहा गया है।

विलक्षण परीक्षा

एक राजा के सौ पुत्र थे। वह उनकी योग्यता का परीक्षण करना चाहता था। उसने सौ थालियों में भोजन परोसा और उन्हें भोजन के कमरे में रखवा दिया। सब राजकुमार कमरे में आए और भोजन करने बैठ गए। भोजन शुरू करने की घण्टी बजी। उसके साथ ही शिकारी कुत्ते छोड़ दिए गए। कुत्ते थालियों पर झपटे। निन्नानवें राजकुमार उनके भय से खाने की थालियां छोड़कर भाग गए। सबसे छोटा राजकुमार वहीं जमकर बैठा रहा। उसने आस-पास की थालियां अपने पास सरका ली। कुत्ते उसके पास आते तो वह उन थालियों से थोड़ा-थोड़ा भोजन लेकर उनके सामने फैंक देता। वे उतना खाते तब तक वह दो चार ग्रास स्वयं ले लेता। इस प्रकार उसने भरपेट भोजन कर लिया।

भोजन के लिए जितना समय रखा गया था, उसे पूरा होने पर राजा ने सब राजकुमारों को बुलाया। राजा ने पूछा- तुम लोगों ने भोजन कर लिया? निन्नानवें राजकुमार एक साथ बोल उठे- हम भोजन कैसे करते? थाली पर बैठते ही तो वहाँ किसी ने कुत्ते छोड़ दिए। वे शिकारी कुत्ते हमें भोजन करने देते क्या? हम सब भूखे हैं।

छोटा राजकुमार खड़ा होकर बोला- पिताजी सब भूखे नहीं हैं। मैं भोजन करके आया हूँ। राजा ने पूछा- तुमने भोजन कैसे कर लिया? क्या तेरे पास कुत्ते नहीं आए? राजकुमार ने कुत्तों के आने और दूर हटाने की सारी बात बता दी। राजा कुमार के बुद्धि-कौशल से बहुत खुश हुआ। उसने सबसे छोटे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

शिक्षा- सफलता उसी को मिलती है जो समय पर बुद्धि का कौशल दिखाए।

अध्ययन की सार्थकता

तीन विद्यार्थी गुरुकुल में पढ़ते थे। उनकी पढ़ाई पूरी हो गई। वे कुलपति के पास गए। उन्होंने कुलपति से घर जाने की इजाजत मांगी। क्या तुम्हारा अध्ययन पूरा हो गया? कुलपति के इस प्रश्न का विद्यार्थियों ने सकारात्मक उत्तर दिया। कुलपति बोले- तुम बारह वर्ष यहाँ रहे, पढ़े और सब परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गए, पर अब तक एक परीक्षा शेष है। विद्यार्थियों ने उत्सुक होकर पूछा- गुरुदेव! वह परीक्षा किस विषय की होगी? कब होगी और कहाँ होगी? कुलपति बोले- उस परीक्षा के लिए न कोई विषय निश्चित है, न समय और न स्थान निश्चित हैं। यह बात सुन विद्यार्थियों की जिज्ञासा बढ़ गई। वे अपनी जिज्ञासा के पंख खोलते हुए बोले- विषय की जानकारी बिना परीक्षा कैसे होगी? कुलपति ने उनकी जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा- यह परीक्षा ऐसे ही होगी।

कुछ समय बीता। एक दिन कुलपति ने तीनों विद्यार्थियों को बुलाकर आदेश दिया- चप्पलें उतारो और सामने जो वृक्ष दिखाई दे रहा है, वहाँ तक दौड़ लगाकर आओ। आज तुम्हारी परीक्षा है। कुलपति का आदेश मिलते ही तीनों ने अपनी चप्पलें उतार दी। उन्होंने नंगे पाँव दौड़ शुरू की। पहला कुछ ही कदम चला और रुक गया, क्योंकि मार्ग में नुकीली शूलें बिखरी पड़ी थीं।

पहला विद्यार्थियों दो-चार कदम ही चला,पुनः वहीं से लौटकर अपने कक्ष में आकर बैठ गया।

दूसरा विद्यार्थी दो क्षण असमंजस में रहा। फिर उसने सोचा- **आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया' गुरु की आज्ञा पर कभी प्रश्नचिन्ह नहीं लगता। मरना मंजूर है, किंतु गुरु के आदेश का पालन करूँगा।** इस चिंतन के साथ वह नंगे पांव उन शूलों पर चला। कुछ दूर चला और उसके पांव लहू-लुहान हो गए। मुश्किल से उसने आधा रास्ता पार किया और लौट आया।

तीसरा विद्यार्थी समझदार था उसने इधर-उधर देखा। झाड़ी के पास एक झाडू पड़ा था। उसने झाडू हाथ में लिया, रास्ते के कांटे बुहारे और गुरु द्वारा संकेतित वृक्ष एक पहुँचकर वापस आ गया। निश्चित समय पर वे तीनों कुलपति के पास गए। कुलपति ने पूछा- आदेश का पालन हो गया?

पहले विद्यार्थी ने अपना सिर झुकाते हुए उत्तर दिया- क्या करें गुरुदेव! मैं आपके आदेश का पालन नहीं कर सका।

दूसरे विद्यार्थी के पांवों की पीड़ा आक्रोश का रूप ले फूट पड़ी। उसने अपने कांटों से बिंधे हुए पांव दिखाते हुए कहा- आदेश का पालन किया, उसका यह परिणाम है। भविष्य में ऐसे आदेश का पालन कभी नहीं करूँगा।

कुलपति ने तीसरे विद्यार्थी से पूछा- तुम्हारे पांव में कांटे नहीं लगे? विद्यार्थी ने कहा- गुरुदेव! मैंने झाडू से रास्ता साफ कर लिया था।

यह बात सुनते ही उन दोनों विद्यार्थियों की आँखे खुल गईं। वे सहमते हुए बोले- गुरुदेव! आपने रास्ता बुहारने को कब कहा था? कुलपति ने उनको समझाते हुए कहा- मैंने ऐसा करने का निषेध भी कब किया था? वस्तुतः अध्ययन तभी सार्थक हो सकता है जब उसके साथ अनुभव और बुद्धि का सदुपयोग हो। कुलपति ने परीक्षा का परिणाम सुनाते हुए तीसरे विद्यार्थी को उत्तीर्ण घोषित किया।

शिक्षा- बुद्धिमत्तापूर्ण किया गया कार्य व्यक्ति की नई पहचान बनाता है।

संदेह क्यों?

महात्मा गांधी अपने विद्यार्थी जीवन में एक दिन स्कूल विलम्ब से पहुँचे। शिक्षक ने पूछा- मोहन! आज देरी से कैसे आए? गांधीजी बोले- घर में कुछ काम हो गया था। शिक्षक को विश्वास नहीं हुआ। मोहन पर बहानेबाजी का आरोप लगा और एक आना फाइन लग गया। गांधीजी रोने लगे। उनके साथी विद्यार्थियों ने उनको चिढ़ाते हुए कहा- मोहन! क्या तुम इतने कमजोर हो, जो एक आने के लिए रोत हो। गांधीजी बोले- मित्रो! मैं एक आने के लिए नहीं रोता। मुझे दुःख इस बात का है कि मैं अपने शिक्षक की दृष्टि में झूठा पड़ गया। मुझ पर संदेह क्यों? झूठ न बोलने पर भी मैं झूठा कहलाया, इस अभियोग से मेरी आत्मा कराह रही है।

शिक्षा- चरित्र-संबंधी आक्षेप मात्र से व्यथित होना महानता का लक्षण है।

पुरुषार्थ की प्रेरणा

बम्बई में नेशनल चर्च के अध्यक्ष फादर विलियम हमारे संपर्क में आए। उन्हें अणुव्रत के बारे में समझाया गया। वे अणुव्रती बने। पूरी समझ और गहरी निष्ठा के साथ अणुव्रती बने। वे अणुव्रत का जागरूकता से पालन करते और जहाँ कहीं जाते, अणुव्रत की चर्चा करते। वे अच्छे प्रवक्ता थे। एक बार बंबई में अणुव्रत सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने छोटी-सी कहानी कही। ओजपूर्ण भाषा और प्रभावी शैली में कही गई उस कहानी को मैं आज तक भी नहीं भूला हूँ। उन्होंने कहा- मटका दही से भरा था। गृहिणी उस पर ढक्कन लगाना भूल गई। उसमें दो मेढ़क गिर पड़े। एक मेंढ़क घबरा गया। भय के कारण उसका शरीर जड़ हो गया। वह धीरे-धीरे दही में धंसा और मृत्यु को प्राप्त हो गया। दूसरे मेंढ़क ने सोचा- मौत सामने खड़ी है। बचाव हो सके तो थोड़ा सा पुरुषार्थ कर देखना चाहिए। इस चिंतन के साथ उसने दही में हाथ-पांव चलाने शुरु किए। दही मथा गया। उससे मक्खन निकाला। मक्खन का गोला बन गया। मेंढ़क आराम से उस पर बैठ गया। तब तक गृहिणी वहाँ पहुँच गई। उसने मेंढ़क को निकाल कर बाहर कर दिया। वह जीवित रह गया।'

शिक्षा- सफलता के लिए समय के साथ-साथ धैर्य और पुरुषार्थ की बहुत आवश्यक है।

मैडम गलत पढ़ाती है

एक छोटी बच्ची स्कूल गई। वहाँ पहले दिन उसकी मैडम ने सिखाया कि परस्पर गाली- गलौज (अपशब्द) नहीं करना चाहिए। बच्ची घर आई। उसने अपनी मम्मी को गाली-गलौज करते देखा तो वह बोली- मम्मी! मैडम ने कहा है गाली देना बुरी बात है। उसकी मम्मी ने अपनी बिटिया के कथन को सुना-अनसुना कर दिया।

दूसरे दिन वह स्कूल गई। मैडम ने उसको बोधपाठ दिया- किसी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। वह घर गई। द्वार पर किसी भिखारी को अपने पिता द्वारा तिरस्कृत होते देख उसने धीरे से कहा- पापा! किसी का तिरस्कार मत करो। पिता ने बिना कुछ सोचे-समझे उसके नाजुक कपोल पर एक चांटा जड़ दिया। तीसरे दिन उसकी मैडम ने कहा- झूठ बोलना पाप है। वह घर आई तो उसकी मम्मी ने उसको झूठ बोलने की प्रेरणा दी। इस विसंगति से बच्ची सहम गई। अगले दिन स्कूल जाने का समय हुआ। स्कूल की बस घर से बाहर खड़ी थी। माता-पिता दोनों उसे जल्दी तैयार होने के लिए कह रहे थे। वह अनमनी होकर बोली- मम्मी! मैं स्कूल नहीं जाऊँगी। क्यों? इस प्रश्न के उत्तर में वह बोली- वहाँ मैडम सब कुछ गलत पढ़ाती हैं।

स्कूल में जो कुछ सुना और सीखा, घर में उससे सर्वथा विपरीत आचरण देखा तथा मम्मी-पापा की डाँट से बच्ची घबरा गई और उसने स्कूल जाने से इंकार कर दिया। मम्मी-पापा को अपनी भूल का एहसास हो गया। उन्होंने बड़ी मुश्किल से लड़की को समझाकर स्कूल जाने के लिए तैयार किया।

शिक्षा- बच्चों को शिष्ट बनाने के लिए सर्वप्रथम आपको शिष्ट बनना चाहिए।

भूल का अनुभव

किसी महिला ने एक दिन विशेष खाद्य पदार्थ बनाया और उसे अलमारी में रख दिया। छोटे बच्चे ने अलमारी खोलने का प्रयत्न किया तो वह बोली- बेटा! अलमारी के अंदर हाबू बैठा है। इसे खोलना मत। खोलोगे तो हाबू खा जाएगा। बच्चा एक बार तो सहम गया, पर बार-बार उसमें मिठाई रखते देख उसका मन ललचा गया। एक दिन उसने माँ की आँख बचाकर अलमारी को थोड़ा सा खोला। शायद किसी कोने से हाबू निकल आए, इस डर से वह कुछ देर खड़ा रहा,किंतु जब भीतर से कोई बाहर नहीं आया तो उसने हिम्मत कर अलमारी खोल ली। बच्चे ने जीभर कर मिठाई खाई और अलमारी बंद कर दी। कुछ देर बाद महिला ने किसी काम से अलमारी खोली। बच्चे की करतूत उससे छिपी नहीं रही। उसने बेटे को बुलाकर पूछा- बोलो, अलमारी किसने खोली? मिठाई किसने खाई? बच्चे ने सारी बात पहले से सोच रखी थी। वह तटस्थ भाव से बोला- माँ! मुझे क्या पता? तुम कह रही थी कि इसमें हाबू रहता है। मिठाई वही खा गया होगा।

बच्चे के इन बोलों ने माँ की विचार-चेतना को जगा दिया। उसे अपनी भूल का अनुभव हो गया। इस घटना से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि **बच्चे के संस्कारों को बिगाड़ने में माता-पिता की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।**

सच तो यह है कि बच्चे का लालन-पालन करना, उसे संरक्षण देना और संस्कारी बनाना बहुत कठिन है। सलक्ष्य बच्चों के निर्माण का प्रयत्न भी बहुत कम होता है। कुछ बच्चे ठोकरें खाते-खाते बन जाते हैं और कुछ बिगड़ जाते हैं। बालक का निर्माण करने के लिए माता को भी बालक बनकर रहना जरूरी है अन्यथा किसी भी बच्चे का निर्माण सही ढंग से नहीं हो सकता।

शिक्षा- शिष्य के संस्कारों की जवाबदारी गुरु पर और बच्चों के संस्कारों की जवाबदारी माता-पिता पर होती है।

बुद्धि का समग्र उपयोग

एक कक्षा में गुरुजी बच्चों को बुद्धि के उपयोग के बारे में पढ़ा रहे थे। पाठ पूरा होने के बाद उन्होंने बच्चों से पूछा कि वे अपनी बुद्धि का उपयोग कैसे करेंगे? उन्हें किस क्षेत्र में काम करना है? अनेक विद्यार्थियों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कार्यक्षेत्रों का चयन कर गुरुजी को बता दिया। एक विद्यार्थी बोला- गुरु जी! मैं अपनी बुद्धि का उपयोग किसी एक क्षेत्र या व्यवसाय के लिए नहीं करना चाहता। गुरुजी ने इसका कारण पूछा तो वह बोला- मेरे पिताजी एक शिक्षक हैं। उन्होंने अपने जीवन का अधिक समय अपने विषय के ज्ञान करने और पढ़ाने में बिता दिया। वे इस बात को भूल गए कि वे एक पति, पिता और सामाजिक प्राणी हैं। उनकी एकनिष्ठता का खामियाजा हमें भुगतना पड़ा, इसलिए मेरा विश्वास बुद्धि के समग्र उपयोग में जाग गया।

शिक्षा- जीवन के सही निर्माण में बुद्धि का बहुआयामी प्रयोग करना चाहिए।

क्षणिक सुख की विचित्र परिणति

बात प्राचीन समय की है। एक दासी राजा के बिछौना बिछाने के लिए नियुक्त थी। वह प्रतिदिन अपना काम निष्ठा के साथ करती थी। राजा राजमहल में पहुँचता, उसके बाद वह चली जाती। एक दिन उसने बिछौना लगाया। काम पूरा हुआ, उस समय वह उनींदी-सी हो रही थी। उसके मन में विचार आया- कितनी कोमल शय्या है। काश! मैं भी इस पर सो पाती। सोने की इच्छा हुई। किंतु मन में दूसरा विकल्प उठा-महाराज आ गए तो क्या होगा? तीसरी तरंग उठी-महाराज देरी से आते हैं। मैं जल्दी ही उठ जाऊँगी।

इस विचार के साथ वह सो गई। शारीरिक थकान के कारण वह शीघ्र ही गहरी नींद में चली गई।

कुछ देर बाद राजा आया। राजा ने देखा कि उसके पलंग पर दासी सो रही है। राजा क्रोध से आगबबूला हो गया। उसने अपने अंगरक्षकों को बुलाकर आदेश दिया- दासी के दश कोड़े लगाओ। अंगरक्षक कोड़े लगाने लगे। दासी जाग गई। वह पलंग से नीचे उतर गई। कुछ समय वह चुपचाप कोड़े खाती रही, फिर अचानक ही हसने लगी। राजा को आश्चर्य हुआ। उसने हसने का कारण पूछा तो दासी बोली- महाराज! आपने मेरे पर बड़ा उपकार किया, जो मुझे इतनी जल्दी जगा दिया। थोड़ी-सी देर इस पलंग पर सोने के दंडस्वरूप मुझ पर इतने कोड़े पड़ेंगे। इस क्षणिक सुख की विचित्र परिणति पर मुझे हसी आ रही है। यह बात सुनते ही राजा के विवेकचक्षु खुल गए। वह संसार से विरक्त हो राजमहल छोड़कर तपोवन में साधना करने चला गया।

शिक्षा-समय पर कही युक्तिसंगत बात हृदय-परिवर्तन का प्रेरक बन जाती है।

मूल्यों का बोध

अध्यापक ने विद्यार्थियों से पूछा- राम को घर क्यों छोड़ना पड़ा? एक विद्यार्थी खड़ा हुआ और बोला- सर! उन्होंने मकान का किराया नहीं चुकाया होगा।

जनक का धनुष किसने तोड़ा? स्कूल का निरीक्षण करने आए एक इंसपेक्टर ने बच्चों से प्रश्न किया। बच्चे एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। उन्होंने एक बच्चे को खड़ा करके पूछा तो वह बोला- महोदय! मैंने धनुष देखा ही नहीं, मैं उसे तोड़ता कैसे?

इंसपेक्टर महोदय को बहुत बुरा लगा। उन्होंने उस कक्षा के अध्यापक को बुलाकर शिकायत के लहजे में कहा- मैंने बच्चों से पूछा कि जनक का धनुष किसने तोड़ा? कोई बच्चा इसका जवाब नहीं दे रहा है। अध्यापक यह बात सुनकर सहम गया और धीमे से बोला- सर! मेरी कक्षा के सभी बच्चे ईमानदार हैं। ये झूठ कभी नहीं बोलते। अगर इनमें से किसी ने धनुष तोड़ा होता तो ये अवश्य ही अपनी गलती स्वीकार कर लेते। अध्यापक की टिप्पणी इंसपेक्टर को चौंकाने वाली थी।

जिस देश के शिक्षक अपनी संस्कृति, परंपरा और इतिहास का थोड़ा भी ज्ञान नहीं रखते, वे शिक्षक अपने विद्यार्थियों को पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त क्या सिखा पाएंगे।

केवल पुस्तकें पढ़ाने वाले अध्यापक अपने बच्चों को साक्षर तो बना सकते हैं, शिक्षित नहीं बना सकते। शिक्षा का उद्देश्य परीक्षा में उत्तीर्ण होना और डिग्री प्राप्त करना मात्र ही नहीं है। वह तो एक मापदंड है, विद्यार्थी की योग्यता का, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। जब तक बच्चों को सांस्कृतिक और चारित्रिक मूल्यों का बोध नहीं दिया जाएगा, उनका सर्वांगीण विकास नहीं हो सकेगा।

शिक्षा- विकास में सांस्कृतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का बोध कराना अपेक्षित है।

मेरेपन की चेतना

राजर्षि भर्तृहरि अरण्यवासी हो गए। वे अपना संपूर्ण धन-वैभव छोड़कर भी उसकी आसक्ति से मुक्त नहीं हो पाए। एक रात वे गहरी नींद में सोए थे। प्रातःकाल नींद खुलते ही उन्होंने इधर-उधर देखा। उसके सामने ही सड़क पर एक चमकीला हीरा पड़ा था। हीरा देखते ही उसे उठा लेने की भावना जागी, फिर भी उन्होंने अपना संयम नहीं तोड़ा। वहाँ से मन को हटाकर वे भगवद् भजन करने लगे।

उसी समय दो घुड़सवार उधर आए। दोनों ने हीरे को देखा। उसे उठाने के लिए दोनों अपने-अपने घोड़ों से नीचे उतरे। एक घुड़सवार बोला- इस रत्न को मैंने पहले देखा। यह मेरा ही है। दूसरे घुड़सवार ने उसका प्रतिवाद करते हुए उस हीरे पर अपना अधिकार बताया बातों-ही-बातों में दोनों भिड़ गए। उन्होंने अपनी तलवारें निकाली और एक-दूसरे पर वार कर दोनों एक साथ मृत्यु को प्राप्त हो गए।

भर्तृहरि ने अपनी आँखों से वह दृश्य देखा। वे सोचने लगे- यह हीरा किसी के साथ अपनत्व नहीं जोड़ता। इसी कारण यह न सुखी होता है, न दुःखी होता है। इसे किसी प्रकार की संवेदना नहीं होती, इसलिए यह न हसता है और न रोता है। मनुष्य के सुख-दुःख का कारण ममत्व है, आसक्ति है।

शिक्षा- ममत्व-भावना को दूर करने से वैराग्य का उत्कर्ष होता है।

श्रमण कौन?

वाराणसी नगरी में जयघोष और विजयघोष नाम के दो ब्राह्मण रहते थे। वे दोनों सहोदर भाई थे और युगल रूप में जन्में हुए थे। एक बार जयघोष नदी पर स्नान करने गया। उसने देखा कि एक सर्प मेंढ़क को निगल रहा है। उसी समय एक कुरर पक्षी वहाँ आया और सर्प को पकड़कर खाने लगा। इस दृश्य को देख वह उद्विग्न हो गया। मन में विराग जगा और गंगा को पार कर श्रमणों के पास पहुँचा। श्रमणों से प्रतिबोध पा वह श्रमण हो गया।

एक बार श्रमण जयघोष वाराणसी आए। उस दिन उनके एक महीने की तपस्या का पारणा था। वे भिक्षा के लिए नगर में गए। उसी दिन ब्राह्मण विजयघोष ने यज्ञ प्रारम्भ किया था। उस यज्ञ में दूर-दूर से ब्राह्मण आए थे। उनके लिए विविध प्रकार की भोजन सामग्री तैयार हुई थी। मुनि वहाँ भिक्षा लेने गए। याचक विजयघोष ने कहा- मुने! भिक्षा केवल ब्राह्मणों के लिए देने योग्य है। जो ब्राह्मण वेदों को जानते हैं, यज्ञ करते हैं तथा अपनी एवं दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हीं को भिक्षा देना चाहिए।

जयघोष अपने भाई द्वारा तिरस्कृत होकर भी उद्विग्न नहीं हुआ। वह उसे प्रतिबोध देना चाहता था। उसने आसक्ति, संसार-मोक्ष, श्रमण-ब्राह्मण आदि के बारे में विस्तार से समझाया। जातिवाद की अतात्विकता का प्रतिपादन कर उसने बताया कि मुंडित होने से कोई श्रमण नहीं होता,ऊंकार का जप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्य में रहने से कोई मुनि नहीं होता और वल्कल के वस्त्र पहनने से कोई तापस नहीं होता। जाति के आधार पर किसी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मानने अथवा उच्चता एवं हीनता की कल्पना करने का कोई ठोस आधार नहीं मिलता।

शिक्षा- वेशभूषा और संप्रदाय के साथ-साथ गुणों से साधु की पहचान होती है।

जिसके लिए, वह कहाँ?

सेठ के घर में आग लगी। आग की सूचना मिलते ही सेठ दौड़कर आया। पचासों कर्मकर साथ में थे। सेठ के आदेश से वे सब जलते हुए घर में घुसे। घर के उस प्रकोष्ठ में घुसे जहाँ करोड़ों की सम्पत्ति थी। सोने-चाँदी के आभूषण थे। बहुमूल्य रत्न थे। आवश्यक कागजात थे। कर्मकर प्राणों को हथेली पर रखकर आग के सामने गए और बहुत कुछ निकाल लाये। सेठ ने सुख की सांस ली।

घर में आग लगने के कुछ समय पहले सेठानी किसी संबंधी के घर गई थी। आग का संवाद वहाँ भी पहुँचा। वह हड़बड़ा उठी। जल्दी-से-जल्दी घर पहुँची। घर से बाहर ही सेठ साहब के साथ उसकी मुलाकात हो गई। उसने भर्राए स्वर में पूछा- क्या हुआ? सेठ ने उसको आश्वस्त करते हुए कहा- घबराओं मत, सब कुछ बाहर निकाल लिया।

सेठ के शब्दों से सेठानी को थोड़ा धीरज बंधा, पर उसका मन स्थिर नहीं हुआ। उसकी आँखें किसी चीज को खोज रही थीं। एक क्षण चारों ओर दृष्टि घुमाकर उसने पूछा- मुन्ना कहाँ है? यह बात सुनते ही सेठ की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। जिसके लिए संपत्ति का अर्जन किया, जिसके सुख और निश्चिंत भविष्य की कल्पना से इतना संग्रह किया और जिसके लिए जलते हुए घर से धन-वैभव निकाला, वह इकलौता बेटा तो आग में ही झुलस गया। अब कौन संभालेगा उस वैभव को और कौन करेगा उसका उपयोग?

शिक्षा- आप किसलिए तथा किसके लिए धनार्जन, धनसंग्रह कर रहे है इसका विमर्श अवश्य करें।

मूल्य सही चोट का

एक युवक कार से यात्रा कर रहा था। शहर से बहुत दूर जंगल में उसकी कार खराब हो गई। युवक ने बहुत प्रयत्न किया उसे ठीक करने का, पर वह ठीक नहीं हो सकी। संयोग की बात, एक मैकेनिक उधर से गुजरा। युवक ने उससे कार ठीक करने को कहा। वह बोला- कार ठीक कर दूँगा, पर रुपए एक हजार लूंगा। युवक निरुपाय था। उसने अपनी स्वीकृति दे दी।मैकेनिक ने कार के इंजन को देखा, हथौड़ा हाथ में लिया, एक बार इंजन पर चोट की और कार स्टार्ट हो गई।

युवक विस्फारित आँखों से उसकी ओर देख रहा था। काम पूरा होने पर उसने एक हजार रुपये मांगे। युवक बोला- यह क्या? एक चोट के एक हजार रुपए?

मैकेनिक ने मुस्कराते हुए कहा- बाबूजी! यह एक हजार रुपया चोट करने का नहीं है। चोट करने का मूल्य एक रुपया है, शेष 999 रुपये तो चोट कहाँ, किस समय और कैसे करनी है? इसके हैं। युवक को समाधान मिल गया।

शिक्षा- शारीरिक बल से अधिक मूल्यवान मानसिक बल है।

झूठ सामने आ ही जाता है

किसी गाँव में एक वणिक रहता था। बातों का बादशाह था वह, किंतु था कायर। चूहों की खट-पट से वह डरता था, पर बातें करता शेर के साथ मुकाबला करने की। अपने गाँव से वह प्रतिदिन छोटे-छोटे देहातों में जाता और सूर्यास्त के बाद वापस लौट आता। उसके घर लौटाने में प्रायः विलंब हो जाता था। पत्नी पूछती- आप इतनी देरी से क्यों आते हैं? वह कहता- तू घर पर बैठी रहती है। तुझे क्या पता? बाहर बस्ती में कितना कष्ट होता है, तू क्या जाने? देहातों से घर आता हूँ तो रास्ते में चोर मिल जाते हैं। उनसे मुकाबला करना पड़ता है। अन्यथा वे देखते-देखते फकीर बना देते हैं। पत्नी अपने पति के स्वभाव से परिचित थी। वह जानती थी कि ये शेखी बघारते हैं, इसलिए उसने एक दिन परीक्षा करने का निर्णय लिया। उस दिन वह बोली- घर में जरूरी काम है। आप जल्दी पहुँच जाना। वणिक बोला-मैं कोशिश करूँगा। वणिक की पत्नी ने पुरुष का वेश बनाया। हाथ में तलवार ली और पति के रास्ते में जाकर एक वृक्ष की ओट में बैठ गई। उस दिन वह अधिक विलंब से आया था। सूर्य अस्त हो चुका था। थोड़ा-थोड़ा अंधेरा भी घिर आया। वणिक उस स्थान के निकट पहुँचा और वह ओट से बाहर आकर खड़ी हो गई। ऊँचे स्वर में वणिक को संबोधित कर बोली- वणिया! ओ वणिया! किधर जा रहा है? ये शब्द सुनते ही वणिक को कंपकंपी छूट गई। पत्नी फिर बोली- हाथ में जो थैला है, उसे चुपचाप मेरे सामने रख दे और बैठ जा यहाँ। एक घंटे तक यहाँ से हिलना मत। वणिक की पत्नी ने थैला हाथ में लिया और जाते-जाते उसके मुँह पर एक चांटा जड़ दिया।

पत्नी थैला लेकर घर पहुँच गई और पुनः अपना वेश बदल लिया। वह जानती थी कि आज तो वे देर से ही आएंगे, अतः निश्चिंत होकर सो गई। रात के बारह बजे वणिक ने आकर दरवाजा खटखटाया। पत्नी ने दरवाजा खोला और उसे उपालंभ देते हुए कहा- कितनी बार कहा था आपको कि आज घर पर काम है इसलिए जल्दी लौट आना किंतु आप तो बारह बजाकर आए हैं। वणिक बोला- तुझे क्या बताऊँ, आज पूरे पचीस चोर मिल गए। उन सबसे बचकर आना कितना कठिन था। किसी को हाथों से धकेला किसी को पांवों से रौंदा, किसी को ललकारा और किसी को दुत्कारा। सच मानो आज तो तेरा सुहाग रहना था इसलिए सही-सलामत घर आ गया, पर मुकाबले में एक थैला चला गया उसका अफसोस है।

पत्नी झुंझलाती हुई बोली- भले आदमी! क्यों झूठ बोलते हो? कहाँ से आए थे पचीस चोर? मुझे तो दिखाओ। वणिक बोला- तुम उन्हें देखते ही बेहोश हो जाओगी। पत्नी मुस्कराती हुई भीतर गई और थैला उसके सामने रखकर बोली- क्यों शेखी बघारते हो। वे पचीस चोर तो मैं ही थी। वणिक को काटो तो खून नहीं। अब वह सहमता हुआ बोला- ओह! अब समझ में आया कि यह सब तेरा मायाजाल था। जब मेरे मुँह पर चांटा पड़ा तभी मैं समझ गया कि ऐसे हाथ किसी आदमी के नहीं हो सकते। तो वे कोमल-कोमल हाथ तेरे ही थे। पत्नी खिलखिलाकर हस पड़ी। उस दिन के बाद वणिक ने बातें बनानी छोड़ दी।

शिक्षा- शेखी बघारने वाले लोगों की बातों में कोई सार नहीं होता।

स्वयं खोजो, तुम कौन हो?

संत के पास एक जिज्ञासु युवक गया। उससे प्रश्न किया- मैं कौन हूँ? संत ने उसकी ओर घूर के देखा। युवक डरकर वहाँ से भागा। वह जिज्ञासु था शांति से नहीं बैठ सका। दूसरे संत के पास जाकर उसने कहा- मैं अमुक संत के पास गया था। उसने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। मुझे घूर कर देखता रहा। मैं तो भाग आया।

संत बोला- तुमने क्या पूछा था? युवक ने कहा- मेरा प्रश्न था कि मैं कौन हूँ?

संत ने अपने तेवर बदलकर कहा- वे बहुत कोमल थे। घूरने से ही काम हो गया। तू मेरे पास यह प्रश्न करता तो मैं तुझे डाँटता भी। प्रश्न का उत्तर पाना है तो वहीं जा। युवक मन ही-मन डर रहा था। फिर भी वहाँ गया। उसने पूछा- मैं कौन हूँ? संत ने कहा- तुम कौन हो? इस प्रश्न का उत्तर कोई दूसरा कैसे देगा? स्वयं खोजो और स्वयं समझने की कोशिश करो कि तुम कौन हो?

शिक्षा- स्वयं को जानने के लिए व्यक्ति को खुद पुरुषार्थ करना होगा।

वासना का तीर

एक क्षत्रिय ससुराल में आणा लेकर आ रहा था। मार्ग में उसे चोर मिल गया। उसने क्षत्रिय को ढेर सारी चीजें ले जाते हुए देखा। उसके मन में लोभ जागा। वह क्षत्रिय का धन हड़पना चाहता था। क्षत्रिय उसके मनोभाव को समझ गया। उसने धनुष चढ़ाया और तूणीर से तीर निकालकर बरसाने शुरू किए। चोर भी दक्ष था। उसने क्षत्रिय के प्रत्येक तीर को अपने फरसे से तोड़ डाला। क्षत्रिय अपने सब तीर फेंक चुका था। उसके पास केवल एक तीर बचा। वह चिंतित हो गया।

क्षत्रिय की पत्नी उसके पास ही घूंघट में बैठी थी। उसने पति का सहयोग करने के लिए अपने तीरों का उपयोग करने का निर्णय लिया। पति से परामर्श करने का अवकाश नहीं था। उसने साहस कर घूंघट हटाया और कटाक्ष फेंका। चोर की दृष्टि उस नवोढ़ा सुंदरी पर पड़ी। वह उसके रूप में मुग्ध हो गया। क्षत्रिय ने अवसर देख अपना अंतिम तीर चला दिया। इस बार चोर ढह पड़ा। क्षत्रिय की आँखों में विजय की चमक तैर आई। चोर बोला- क्षत्रिय! अभिमान मत कर। मैं तेरे बाण से नहीं गिरा हूँ। मुझे वासना का तीर लगा है।

शिक्षा- सफलता पाने के लिए कामदेव को परास्त करना आवश्यक है।

आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

जब एक महान् संत बाल्यावस्था में थे, तब उनकी माँ ने कहा- बेटा! जाओ, एक पलाश की टहनी ले आओ। बेटा हाथ में कुल्हाड़ी लेकर पलाश की टहनी लाने गया। पलाश के निकट पहुँच उसने कुल्हाड़ी हाथ में ली। वह टहनी पर वार करे, उससे पहले ही एक नया चिंतन उभरा-पेड़ में प्राण है, जीवन है। मैं इसकी टहनी काटूँगा, क्या इसके पीड़ा नहीं होगी? बेटे के प्राणों से उठा हुआ प्रश्न लौटकर वहीं समा गया। वहाँ कोई समाधान देने वाला नहीं था। बेटे ने अपना हाथ घुमाया और कुल्हाड़ी का प्रहार अपने पैर पर किया। पीड़ा का अनुभव हुआ। पैर से खून बहने लगा। धोती खून से रंग गई। वह टहनी नहीं तोड़ सका। कुल्हाड़ी हाथ में लेकर घर लौट आया। माँ ने पैर से बहते खून को देखकर पूछा- बेटा! क्या हो गया?

बेटा- माँ! मैंने अपने पैर पर कुल्हाड़ी चलाई। लगता है कोई नस खुल गई। उससे खून बह रहा है।

माँ- बेटा! तू पागल है क्या? अपने हाथों पाँव पर कुल्हाड़ी क्यों चलाई?

बेटा- माँ! मैं पागल नहीं हूँ। मैंने परीक्षण किया था।

माँ- किस बात का परीक्षण?

बेटा-मेरे शरीर में प्राण हैं, वैसे ही पलाश के शरीर में प्राण हैं। टहनी तोड़ने से पलाश को पीड़ा होगी क्या? उसका परिक्षण किया था।

माँ- अरे मूर्ख! वृक्ष और मनुष्य की कोई तुलना होती है?

बेटा- माँ! जो बात मेरे प्रतिकूल है, वह औरों के भी होगी। पाव पर प्रहार करने से मुझे पीड़ा का अनुभव हुआ। फिर मैंने टहनी नहीं काटी।

माँ- लगता है, बेटा! तू कोई बड़ा संत होगा। माँ के कहे गए बोल सच हो गए। छोटा-सा बालक आगे चलकर संत बना, क्योंकि बचपन में ही उसका विवेक जाग गया, अंतःप्रज्ञा का जागरण हो गया। विश्वात्मा के साथ तादात्म्य जुड़ गया। वृक्ष की चेतना के साथ उसकी चेतना का तार जुड़ गया। संसार के छोटे-बड़े किसी भी प्राणी की पीड़ा में अपनी पीड़ा का अनुभव करने वाला व्यक्ति न कभी किसी को सता सकता है और न किसी का प्राण वियोजन कर सकता है।

शिक्षा -जो स्वयं के लिए अप्रिय लगे वैसा दूसरे के साथ भी नहीं करना चाहिए।

"उत्तम-पण्डित"

पापं पापं परिज्ञाय, यस्तमोक्तुं समुद्यतः।
भवेत्स एव विख्यातो, ह्युत्तमो भुवि पण्डितः।।

अर्थः- जो पाप को पाप जानकर उसे छोड़ने के लिए उद्यत रहता है, पृथ्वी में वही उत्तम पण्डित कहलाता है।

अध्यात्म-विद्या में प्रवेश

एक युवक बहुत बड़े ऋद्धि संपन्न संत के पास गया। संत जी ने प्रश्नायित आँखों से उसकी ओर देखते हुए कहा- बालक! तुम क्या चाहते हो? अणिमा-लब्धि पाना चाहते हो? उससे तुम बिल्कुल छोटे बन सकते हो। महिमा-लब्धि से तुम अपने आकार को बढ़ा सकते हो। हलके और भारी बनने की भी लब्धियाँ हैं। तुम चाहो तो तुम्हें आकाशविहारी बना दूँ। बताओ, तुम चाहते क्या हो?

बालक स्वामीजी की बात सुनकर गंभीर होता जा रहा था। उसने प्रश्न के उत्तर में कहा- इन सबसे मुझे मिलेगा क्या? स्वामीजी बोले- तुम्हारा नाम होगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी, प्रख्यात हो जाओगे तुम। बालक बोला- गुरुदेव! मुझे ये सब नहीं चाहिए। आपको देना ही है तो मुझे वह तत्त्व दो, जिससे मैं स्वयं को पा सकूँ।

बालक शब्द उसकी भावना का सक्षम प्रतिनिधित्व कर रहे थे। स्वामीजी ने उसके अंतःकरण को पढ़ा, परखा और उसे अध्यात्म विद्या के लिए योग्य पात्र पाया। उनकी वर्षों की खोज पूर्ण हुई। उन्होंने उसे अपना शिष्य बना लिया। वही बालक आगे जाकर प्रसिद्ध साधु बना, उसने अध्यात्म-विद्या को उजागर करने में अपना जीवन लगा दिया।

शिक्षा- आत्म-तत्त्व को जान लेने पर कुछ और जानना शेष नहीं रहता।

भय और प्रलोभन

एक विद्वान एक बार सम्राट के अतिथि बने। वहाँ तीन पिंजरे रखे हुए थे। एक पिंजरे में चूहा था, उसके सामने मेवा पड़ा था। दूसरे पिंजरे में बिल्ली थी, उसके सामने मलाई से भरा हुआ कटोरा था। तीसरे पिंजरे में बाज पक्षी था, उसके सामने ताजा मांस था। चूहा, बिल्ली और बाज-तीनों भूखे थे, फिर भी चूहा मेवा नहीं खा रहा था। बिल्ली मलाई नहीं खा रही थी और बाज मांस नहीं खा रहा था। सम्राट ने विद्वान से पूछा- ये तीनों भूखे हैं, अपना-अपना भक्ष्य खाना चाहते हैं फिर भी खा क्यों नहीं रहे हैं?

विद्वान ने सारी स्थिति का आकलन कर कहा- चूहा अपने सामने बिल्ली को देखकर भयभीत है, इसलिए उसे मेवा खाना याद ही नहीं रहा। बिल्ली अपने सामने बाज को देखकर घबरा रही है। चूहा और मलाई दोनों उसके प्रिय खाद्य हैं, पर बाज के भय से उसके रस का स्राव ही नहीं हो पाता और भयाक्रांत होकर अपने बचाव की बात सोच रही है। बाज के सामने किसी प्रकार का भय नहीं है, पर वह दो पदार्थों के प्रलोभन में फंसा हुआ है। पहले बिल्ली को खाऊं या चूहे को? इस डांवाडोल स्थिति में उसे अपने पिंजरे में रखा हुआ मांस दिखाई ही नहीं दे रहा है। लंबे समय तक इनकी स्थिति यही रही तो ये तीनों ही भूख से तड़प-तड़प कर मर जाएंगे।

शिक्षा- मन का द्वंद्व सही निर्णय नहीं लेने देता।

प्रक्रिया का बोध और उपयोग

एक व्यापारी व्यापार के सिलसिले में दूसरे देशों की यात्रा किया करता था। एक बार वह ऐसे देश में पहुँच गया, जहाँ गाय, भैंस आदि दूध देने वाले पशु नहीं होते थे। दूसरी बार जब वह वहाँ गया तो अपने साथ एक गाय भी ले गया। उस देश के राजा की कृपा पाने के लिए वह उसके पास प्रतिदिन कुछ-न-कुछ उपहार भेजता। उसके उपहारों में बहुमूल्य वस्तुओं के साथ-साथ दूध, दही, मक्खन, रबड़ी, मावा, संदेश आदि खाद्य-पदार्थ भी थे। राजा को वे पदार्थ बहुत रुचिकर लगे। व्यापारी कुशल था। उसने इस माध्यम से वहाँ काफी सुविधाएं उपलब्ध कर लीं और अपना व्यापार जमा लिया। कुछ महीनों बाद जब वह स्वदेश लौटने लगा तो राजा को अच्छा नहीं लगा, क्योंकि उसके चले जाने से दूध से बने पदार्थ कहाँ से आ सकते थे। अव्यक्त रूप से राजा ने अपनी भावना का आभास उसे दे दिया। व्यापारी ने भावी लाभ की आशा में गाय राजा को भेंट कर दी और बता दिया कि वे सारे पदार्थ इसी की बदौलत प्राप्त होते थे।

व्यापारी वहाँ से विदा हो गया। राजा ने अपने कुछ कर्मचारियों को गाय की सेवा में नियुक्त कर उन्हें निर्देश दिया कि इससे जो भी पदार्थ मिले, उसे लेकर सीधे मेरे पास पहुँच जाना। कर्मकर राजा का आदेश स्वीकार कर सोने और चाँदी के पात्र लेकर गाय के पास खड़े हो गए। थोड़ी देर में गाय ने मूत्र-विसर्जन किया। एक कर्मकर ने आगे बढ़कर चाँदी का पात्र उससे भर लिया। वह उसे लेकर राजा के पास पहुँचा। पात्र में पीला पदार्थ देखकर राजा बोला- वह तो हमेशा सफेद चीजें लाता था। शायद यह कोई खास चीज हो; ऐसा कहकर उसने एक कटोरी भरकर होठों से लगा ली। उस बदबूदार नमकीन पेय के दो घूंट

भी गले से नीचे नहीं उतरे होंगे कि राजा बौखला उठा। वह कुछ बोले, इससे पहले ही दूसरा कर्मकर गोबर लेकर आ खड़ा हुआ। राजा ने सोचा। शायद यह पदार्थ ठीक हो और एक चम्मच भर गोबर मुँह में डाल लिया। राजा का मुँह इतना खराब हुआ कि उसे निगलने के बजाय थूक दिया। लोटा भर पानी मंगाकर कुल्ले करने पर भी मुँह का कसैलापन नहीं मिटा।

इस घटना ने राजा को उत्तेजित कर दिया। उसने तत्काल कुछ राजपुरुषों को आदेश दिया कि उस व्यापारी को इसी समय मेरे सामने उपस्थित करो। मेरे साथ भी यह खिलवाड़। इतना धोखेबाज आदमी। राजपुरुषों ने व्यापारी का पीछा किया और अपने राज्य की सीमा में ही उसे पकड़कर पुनः राजा के पास ले आए। व्यापारी एक बार तो घबराया, पर जब उसे स्थिति की जानकारी मिली तो राजा और उसके कर्मकरों की अज्ञानता पर मन-ही-मन मुस्कुरा उठा। राजा की कठोर दृष्टि और कटु शब्दों से प्रताड़ित होकर भी वह संतुलित रहा। उसने अत्यंत विनम्र होकर कहा- राजन्! मैं आपको धोखा दूँ यह मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता, फिर भी मेरा कसूर इतना है कि मैंने आपको दोहन की विधि नहीं बताई।

राजा का आवेश तब तक शांत हो चुका था। उसने दोहन के संबंध में जिज्ञासा की तो व्यापारी ने गाय को चारा-पानी डालने और दूध दुहने से लेकर खाद्य पदार्थ बनाने तक की विधियाँ उन्हें समझा दीं। उसके बाद राजा के कर्मकरों ने गाय को अच्छे ढ़ंग से संभाल लिया।

शिक्षा- प्रक्रिया को सम्यक् रूप में जाने बिना उपयोग संभव नहीं हो सकता।

भीतर की ओर भागना

जापान की घटना है। एक सात मंजिले मकान के स्वामी ने एक भोज दिया। परिजनों, स्वजनों, मित्रों को आमंत्रित किया। गृहस्वामी के झेन गुरु संन्यासी भी उस भोज सम्मिलित थे। भोजन हो रहा था। सहसा भूकंप आया। लकड़ी का मकान हिल उठा। मेहमान भागने लगे। गृहस्वामी भी भागने की तैयारी में था। उसे संन्यासी का ख्याल हो आया। उसने उधर देखा। संन्यासी आँखें मूंदे निश्चिंत बैठा था। एक ओर मौत का खुला तांडव, दूसरी ओर अपूर्व शांति। गृहस्वामी भाग नहीं सका। वह संन्यासी के पास आकर बैठ गया।

कुछ समय बाद भूकंप निकल गया। संन्यासी ने आँखें खोलीं। गृहस्वामी ने पूछा- गुरुदेव! आप भागे क्यों नहीं? संन्यासी बोला- हम भी भागे थे, पर थोड़ा अंतर है हमारे भागने में और अन्य लोगों के भागने में। हम भीतर की ओर भागे थे। लोग बाहर की ओर भागे थे। बाहर भागने का कोई अर्थ भी नहीं था। हम लोग सातवीं मंजिल पर हैं। भागकर कहाँ जाएंगे? नीचे वाली मंजिलों पर ही तो। हम किसी भी मंजिल पर हों, मकान गिरता तो हमारी मौत निश्चित थी। भीतर मौत का कोई खतरा नहीं होता। वहाँ सुरक्षा की पूरी व्यवस्था है। खतरे से बचना हो तो भीतर की ओर भागने से ही बचाव संभव है।

शिक्षा- यदि स्वयं को सुरक्षित रखना हो तो भीतर की ओर जाएं।

कानों से सुनकर मुँह से निकालना

दो मित्र शादी के बाद पहली बार मिले। वे अपनी-अपनी पत्नी के व्यक्तित्व का विश्लेषण कर रहे थे। एक मित्र बोला- मेरी पत्नी पढ़ी-लिखी है। काम-काज में दक्ष है, पर मेरी बात को महत्त्व नहीं देती। वह एक कान से सुनती है और दूसरे से निकाल देती है। दूसरा मित्र अपनी व्यथा-कथा सुनाता हुआ बोला- मेरी पत्नी मेरे हर कथन को दोनों कानों से सुनती है और मुँह से निकालती है। सुना-अनसुना कर देना अच्छी बात नहीं है, पर कानों से सुनकर मुँह से निकालने अर्थात् बकवास करने की बात तो और अधिक भयावह है।

शिक्षा- ज्यादा बोलना व्यक्ति की गरिमा को घटाता है।

"विद्या ही सबकुछ है"

विद्या बन्धुश्च मित्रंच, विद्या कल्याण-कारिका।
सहगामिधनं विद्या, विद्या सर्वार्थ-साधनी।।

अर्थः- विद्या बन्धु है, मित्र है; विद्या कल्याणकारी है, विद्या साथ चलने वाला धन है; और विद्या सम्पूर्ण प्रयोजन सिद्ध करने वाली है।

दृष्टि में नयापन

राम, सीता और लक्ष्मण वन में गए। भरत ननिहाल से लौटकर आया। उसने राज्याभिषेक की बात स्वीकार नहीं की। कैकयी के सामने समस्या खड़ी हो गई। भरत राम को अयोध्या लौटा लाना चाहता था। वह अपनी माता और मंत्री को साथ ले राम से मिलने के लिए अयोध्या से निकल पड़ा। खोजते-खोजते उसे राम दिखाई दिए। दौड़कर वहाँ पहुँचा। उसने राम, सीता और लक्ष्मण को प्रणाम किया। राम ने भरत को छाती से लगा लिया। भरत राम को देखने लगा तो देखता ही रहा। राम ने पूछा- भरत! ऐसे क्या देख रहे हो? भरत बोले- भैया, आप नए-नए से लग रहे हैं। आपमें यह विलक्षणता कहाँ से आ गई? मैं चाहकर भी आपके चेहरे से दृष्टि नहीं हटा सकता। इच्छा होती है, मैं आपको देखता ही रहूँ। राम वही थे। भरत की दृष्टि में नयापन था। इसी कारण उसे राम में विलक्षणता का दर्शन हुआ।

शिक्षा- हम जिस कोण से देखना चाहे, हमें वैसे ही दिखाई देता है।